म्पादकीय वक्तव्य—

श्री श्वे. स्था. जैन धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन · अठारह वर्षों से होता आ रहा है। इस शिविर मे हजारो शोर और तरुण विद्यार्थियों ने जैन तत्व ज्ञान, आगम, कथा तेहास आदि का ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को सस्कारशील, द्धामय और विवेकपूर्ण बनाने के साथ जिनशासन और प्रवचन ी प्रभावना मे सर्वत्र सक्रिय सहयोग व सेवा भावना का परिचय या। परिणाम स्वरूप जगह जगह स्थानीय व क्षेत्रीय शिविरो के ायोजन होने लगे। स्वाध्यायी शिविरो के आयोजनों में भी प्रशि- क्षत विद्यार्थियो की भूमिका, उत्साह-वर्द्धक व महत्वपूर्ण रही।

शिविरों मे व्यवस्थित पाठ्यक्रमानुसार शिक्षण-प्रदान करने के उद्देश्य से शिविर पाठ्यक्रम तैयार करने की भावना बलवती हुई और इस कार्य के लिए दृढधर्मी आदर्श श्रावक श्री धीगडमलजी सा गिडिया के मन्त्रीत्व काल मे शिक्षण शिविर समिति के विनम्र आग्रहानुसार प. र, श्री पारस मुनि जी म. सा. ने सुबोध जैन पाठमाला भाग 1—2 का लेखन सपादन किया।

शिविरो का आयोजन राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात आदि राज्यो मे होने के साथ उनमे छात्रो की सख्या उत्साह वर्द्धक रही। परिणाम स्वरुप शिविर कार्य मे सचालको एव शिक्षको के सामने एक बडी समस्या-शिविरोपयोगी साहित्य के अभाव की अखरने लगी।

गत वर्ष इन्दौर में सुधर्म प्रचार मण्डल व श्री श्वे. स्था. जैन धार्मिक शिक्षण शिविर के तत्वावधान मे ऐतिहासिक शिविर —

आयोजन हुआ। शिविर समापन के अवसर पर शिविर ... क्रमानुसार साहित्य तैयार करने की चर्चा पुनः चली। परम ... शिक्षाप्रेमी, शासनसेवी, सेठ सा. किशन लाल जी सा. मालू ने ... से पधारे सुश्रावक श्री धीगडमल जी सा और आदर्श तत्वज्ञाता श्रावक श्री जसवंत भाई शाह व अनुभवी ... पाच वर्ष के पाठ्यक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा तैयार करने का ... आग्रह किया। तदनुसार श्री धीगडमल जी सा. के नेतृत्व में ... साहित्य निर्माण समिति का गठन किया गया और ... पाठ्यक्रम के प्रथम पुष्प के रूप में श्री सुधर्म प्रचार मण्डल, जोधपुर ने यह पुस्तक आपके सामने प्रस्तुत की। पुस्तक को ... सुबोध और सरल बनाने के लिए सुबोध जैन पाठमाला और ... प्रकाशनो मे से भी सामग्री सग्रहित की गई है। जिन विद्वान् लेखकों की रचनाओं का इसमें सकलन हुआ है, उनके प्रति भी हम कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हैं।

पुस्तक की सामग्री सकलन सयोजक एव लेखन मे अनुभवी श्रावक रत्न श्री धीगडमलजी सा. का मार्ग दर्शन महत्वपूर्ण रहा। प्रूफ सशोधन एव प्रेस सबधी कार्यों मे तरुण उत्साही युवक श्री विजय सिंह जी कोठारी की सेवाएं भी सराहनीय रही।

पुस्तक कहा तक शिविरों व छात्रोपयोगी बन सकी है? इसका निर्णय तो विद्वान् अध्यापक और प्रबुद्ध शिविर छात्र करेंगे। ... पुस्तक के पठन पाठन से शिविरार्थियों में जिनशासनानुराग ... भावना व विवेक शील दृष्टिकोण विकसित हुआ तो हम ... श्रम सार्थक समझेंगे।

महेश चन्द्र जैन, लक्ष्मी लाल बक...

सचिव की विज्ञप्ति

सुधर्म प्रचार मण्डल की स्थापना के पश्चात् शिविरोपयोगी स्वाध्यायोपयोगी साहित्य के प्रकाशन के लिए हमा प्रयत्नशील । इसके अन्तर्गत सुधर्म स्तवन सग्रह भाग 1 व 2 का प्रकाशन [illegible] पत्रिका का प्रकाशन भी [illegible] की तात्विक जानकारी व [illegible]

साहित्य प्रकाशन के इसी क्रम मे अब हम सुधर्म पाठमाला [illegible]र तीसरा भाग भी ग्रीष्मावकाश के पूर्व प्रकाशित हो सके इसके लिए हम [illegible] प्रयत्नशील है । हमारी भावना है कि ग्रीष्मावकाश मे आयोजित [illegible] शिविरो में इस पुस्तक की उपलब्धि भी शिविरार्थी शिक्षार्थियों को [illegible] लाभान्वित कर सके ।

इसके साथ शीघ्र ही हम स्वाध्यायियों का वक्तृत्व कला व भाषण शैली को रोचक व प्रभावी बनाने के उद्देश्य से सुधर्म [illegible] स्वाराधन प्रवचन माला का प्रकाशन भी करने जा रहे है । जिन [illegible] धर्मस्थाओं शिविरो स्वाध्यायियों को इन पुस्तकों की आवश्यकता हो [illegible] देवे हमें सेवा का लाभ प्रदान करें । पुस्तकों की कीमत लागत मात्र [illegible] रखी गई है ।

नेमीचन्द सांखला
सचिव
श्री सुधर्म प्रचार मण्डल, जोधपुर

उद्देश्यों की पूर्ति एवं स्वाध्यायियों की ज्ञान वृद्धि के लिए नाथद्वारा, जोधपुर, पाली, बड़ौद, मेरमा, बैंगलोर, कुपुर, बोरवड़, रालावास मालनगाव, जालना, धामर, दुर्ग, दाम नगर, इन्दौर, मनिगांव, महमदाबाद, कड़ा, सोमड़ा आदि कई क्षेत्रों में स्वाध्यायी प्रशिक्षण शिविर एवं महिला छात्र-छात्राओं के शिक्षण शिविरों का आयोजन किया गया है।

(ब) पर्युषण पर्वाराधना— पर्युषण महापर्व के शुभावसर पर धर्माराधन एवं धर्म प्रचार के लिए 1976 में 46 क्षेत्रों में 95, 1977 में 95 क्षेत्रों में 185, 1978 में 116 क्षेत्रों में 235, 1979 में 127 क्षेत्रों में 263 व 1980 में 130 क्षेत्रों में 250 स्वाध्यायी बंधुओं को देश के सभी सुदूर क्षेत्रों में भेजा।

यह सन्तोष एवं हर्ष की बात है कि स्वाध्यायियों की सेवा भावना एवं प्रवचनाराधना एवं प्रभावना के संबंध में सब ओर से प्रशस्ति एवं प्रशंसा पत्र प्राप्त हुए। निश्चय ही मंडल को अपने सेवाभावी, सदाचारी, श्रद्धालु स्वाध्यायियों पर गर्व है।

हमारे स्वाध्यायी बंधु अपनी निरन्तर ज्ञान वृद्धि के द्वारा मंडल की यश पताका को लहराते, फहराते के लिये श्रोताओं के हृदय में जैन धर्म की अद्वितीयता, सर्वोपरिता, मौलिकता, विशुद्धता के भाव जगाकर उनमें जैनत्व के सच्चे संस्कार दृढ़ करेंगे।

सुधर्म प्रवचन पत्रिका प्रकाशन :—

जनवरी 1977 से स्वाध्यायियों की ज्ञान वृद्धि के लिये, तत्व धर्म रुचि को जाग्रत करने के लिये सुधर्म प्रवचन पत्रिका का प्रकाशन किया

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए

श्री सुधर्म प्रचार मण्डल, जोधपुर

एक परिचय

श्री सुधर्म प्रचार मण्डल, जोधपुर की स्थापना दिनांक 11 जनवरी 1976 के शुभ मुहूर्त मे हुई। यह अति हर्ष की बात है कि कार्यकर्ताओं की सच्ची लगन, सेवा भावना और कार्य कुशलता के परिणाम स्वरूप यह संस्था अल्प काल मे तीव्र गति से प्रगति के पथ पर चरण बढ़ाती हुई जिनशासन की सुन्दर प्रभावना और प्रचार कर रही है।

स्थापना के उद्देश्यः—

देश देशांतर में आबाल वृद्धो मे धार्मिक चेतना जागृत हो, जिनशासन प्रेमी तत्वरसिक श्रद्धालु सज्जन जैन संस्कृति, सभ्यता, आगम साहित्य का पूर्ण परिचय एवं प्रशिक्षण प्राप्त कर अपने जीवन को प्रमाणित सच्चा, संस्कारशील बनाकर तथा भगवान् महावीर की जन हितकारिणी, भव समुद्र तारिणी, कलुष कर्म-मल हारिणी, अमृतोपम मधुर, आदर्श, अद्वितीय, अनुत्तर जिनवाणी का व्यापक विस्तार कर उनकी गौरव गरिमा को अटल अक्षुण्ण बनाये रखने मे समर्थ, सुयोग्य, सशक्त बने, यही पवित्र भावना और प्रबल प्रेरणा मण्डल की स्थापना का आधार बनी।

प्रगति के चरणः—

(अ) प्रशिक्षण एवं शिक्षण शिविरों का आयोजन.— उक्त

उद्देश्यों की पूर्ति एवं स्वाध्यायियों की ज्ञान वृद्धि के लिए नाथद्वारा, जोधपुर, धारा, बडौद, देवास, बैंगलोर, कुन्नूर, बोरवड, राणावास, गामनगांव, आदमा, सागर, दुर्ग, राम नगर, इन्दौर, मनिगांव, अहमदाबाद, कडा, सीमड़ा आदि कई क्षेत्रों में स्वाध्यायी प्रशिक्षण शिविर एवं महिला छात्र-छात्राओं के शिक्षण शिविरों का आयोजन किया गया है।

(ब) पर्युषण पर्वाराधना— पर्युषण महापर्व के शुभावसर पर धर्माराधन एवं धर्म प्रचार के लिए 1976 में 46 क्षेत्रों में 95, 1977 में 95 क्षेत्रों में 185, 1978 में 116 क्षेत्रों में 235, 1979 में 127 क्षेत्रों में 263 व 1980 में 130 क्षेत्रों में 250 स्वाध्यायी बंधुओं को देश के सभी सुदूर क्षेत्रों में भेजा।

यह सन्तोष एवं हर्ष की बात है कि स्वाध्यायियों की सेवा भावना एवं प्रवचनाराधना एवं प्रभावना के संबंध में सब ओर से प्रशस्ति एवं प्रशंसा पत्र प्राप्त हुए। निश्चय ही मंडल को अपने सेवाभावी, सदाचारी, श्रद्धालु स्वाध्यायियों पर गर्व है।

हमारे स्वाध्यायी बंधु अपनी निरन्तर ज्ञान वृद्धि के द्वारा मंडल की यश पताका को लहराने, फहराने के लिये श्रोताओं के हृदय में जैन धर्म की अद्वितीयता, सर्वोपरिता, मौलिकता, विशुद्धता के भाव जगाकर उनमें जैनत्व के सच्चे संस्कार दृढ़ करेंगे।

सुधर्म प्रवचन पत्रिका प्रकाशन :—

जनवरी 1977 से स्वाध्यायियों की ज्ञान वृद्धि के लिये, तत्व धर्म रुचि को जाग्रत करने के लिये सुधर्म प्रवचन पत्रिका का प्रकाशन किया

जा रहा है। इस पत्रिका की विषय सामग्री के संकलन, लेख
एवं संयोजन में इसे अधिकाधिक स्वाध्यायोपयोगी बनाने
लक्ष्य रखा जाता है। यही एक ऐसी पत्रिका है जो सामान्
स्वाध्यायी से लेकर तत्त्वज्ञ श्रावकों के लिये भी समान रूप से
सर्वोपयोगी रही है।

साहित्य प्रकाशन :—

स्वाध्यायी सज्जनों की प्रवचन कला का विकसित करने के
लिये तदनुसार साहित्य सृजन एवं निर्माण का लक्ष्य भी समांतर रूप
से गतिशील रहा है। इसके अन्तर्गत अन्तकृत विवेचन, सुधर्म स्तवन
संग्रह भाग 1 व 2 का प्रकाशन महत्वपूर्ण है। सुधर्म पर्युषण
प्रवचन पुस्तक का शीघ्र प्रकाशन भी स्वाध्यायियों के सुविधार्थ
विचाराधीन है।

प्रांतीय शाखाओं की स्थापना :—

स्वाध्याय और शिक्षण कार्य के विशेष और व्यवस्थित प्रचार
के लिये निम्नानुसार शाखाएं स्थापित की गई हैं —

राजस्थान में:— पाली, डग भोपालसागर
मध्यप्रदेश में — इन्दौर, राजनांदगाव
महाराष्ट्र में:— येवला
कर्नाटक में.— बैंगलोर
गुजरात में.— अहमदाबाद

धार्मिक शिक्षण शालाओं को अनुदानः—

धार्मिक शिक्षण शालाओं के सम्यक सचालन व विकास के लिए संघ की ओर से कई धार्मिक पाठशालाओं को अनुदान दिलाने की व्यवस्था है। एवं पाठशालाओं एवं स्वाध्यायियों को नि. शुल्क साहित्य वितरित किया जाता है।

आपसे निवेदन.—

जैन धर्म विश्व का अद्वितीय अनुत्तम धर्म है। जिनशासन की सेवा हमारा पवित्र उद्देश्य और लक्ष्य होना चाहिए। इसके द्वारा अपनी आत्म साधना के साथ साथ हम समाज में धार्मिक जागृति लाने, संवर, निर्जरा की प्रवृति जगाने का महान पुण्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं। आइये, इस पवित्र कार्य के लिये हम आपका आह्वान करते हैं।

1 आप स्वयं स्वाध्यायी बनकर पर्यु षण महापर्व पर सेवा देकर पुण्योपार्जन कीजिये।

2 अपने गांव में नित्य स्वाध्यायी प्रवृति चालू कीजिये।

3 धार्मिक पाठशालाएं स्थापित कर छात्र छात्राओं में आध्यात्मिक प्रवृति बढ़ाइये।

4 श्री सुधर्म प्रचार मण्डल को आर्थिक सहयोग प्रदान कर धार्मिक प्रवृतियों की प्रगति व प्रसार मे सहयोग दीजिये।

कार्य हमारा सहयोग आपका:—

मण्डल की प्रवृति मे आप सब का जिस प्रकार हार्दिक सहयोग मिलता रहा है इसी प्रकार भविष्य मे निरन्तर मिलता रहेगा, ऐसी शुभाशा है। आप सबके उदारता पूर्ण सहयोग व मार्ग दर्शन से मण्डल निरन्तर उन्नति के पथ पर चलकर स्थानकवासी जैन समाज की सदैव सेवा करता रहेगा, यही हमारी मनोकामना है।

महेशचन्द्र जैन
संयोजक
सुधर्म प्रचार मण्डल
जोधपुर

※ विषय-सूची ※

क्र. स. विषय

तत्व विभाग

कथा विभाग

पृ. स	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
136	15	करले	करके
139	20	थोगी	योगी
140	14	खहा	कहा
142	3	अभिज्ञान	अभिमान
142	6	तदनु	तदनुसार
150	1	धमरुचि	धर्मरुचि
158	14	हुई हा	हुई हो
166	14	प्राया	प्राय.
177	13	मव्यवहार	सद्व्यवहार
179	5	भावी	भागी
199	4	रात्रि भोजन तप है	रात्रि भोजन त्या भी तप है ।
208	23	प्रज्ञान	अज्ञान
219	12	वेइन्द्रियो	वे इन्द्रियो
220	22	अपना	अपनी
222	2	धारणा	धारणात्
226	7	विवाप	विवाद
226	17	लक्ष्य	लक्ष्य

सुधर्म पाठमाला भाग-१

– प्रार्थना –

※ मंगलमय–महावीर ※

गलमय महावीर हमारा मगलमय महावीर ।। टेर ।।

ामन नायक शिव सुख दायक, मेरु सम प्रभु धीर हमारा ... ...
व दु ख भजन भवि मन रजन, सागर सम गम्भीर हमारा ..... .
ाद्धार्थ त्रिशलाजी के नन्दा, नंदीवर्धन के वीर हमारा .. ..
तिन उद्धारण विरुद तुम्हारा, परमातम पद धीर हमारा ....
रुणा सागर करुणा सिंधु, मेटो भव की पीर हमारा .
ावसागर से पार उतारो, जय जय जय महावीर हमारा ....

नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ॥१॥
एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पाव-प्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसि, पढमं हवइ मंगलं ॥२॥

शब्दार्थ :

पांच पदों को नमस्कार

1 णमो=नमस्कार हो। अरिहंताण=अरिहन्तों को हो। 2 णमो- नमस्कार हो। सिद्धाण=सिद्धों को। 3 णमो=नमस्कार हो। आयरियाणं - आचार्यों को। 4 णमो - नमस्कार हो। उवज्झायाणं=उपाध्यायों को। 5 णमो=नमस्कार हो। लोए=लोक में रहे हुए। सव्व - सब। साहूण=साधुओं को।

नमस्कार फल

एसो=यह। पंच=पाच। णमोक्कारो नमस्कार। सव्व सब। पावप्पणासणो=पापों का नाश करने वाला है। च=और

क्यों ?

सव्वेसि=सब। मंगलाण=मंगलों में। पढमं=प्रथम (सर्वश्रेष्ठ) मंगल। हवइ=है।

नमस्कार मन्त्र प्रश्नोत्तर

नमस्कार किसे कहते हैं ?
दोनों हाथों को जोड कर ललाट पर लगाते हुए मस्तक झुकाना।
मन्त्र किसे कहते हैं ?
जिसमे अक्षर थोडे हों और भाव बहुत हों।
अरिहन्त किसे कहते हैं ?
(अ) जिन्होंने - 1 ज्ञानावरणीय, 2. दर्शनावरणीय, 3. मोहनीय और 4. अन्तराय-इन चारों घाति कर्मों को क्षय करके अज्ञान, मोह, राग, द्वेष, अन्तराय आदि आत्मा के 'अरि' अर्थात् शत्रुओ का 'हत' अर्थात् नाश किया हो तथा (आ) जो जैन धर्म को प्रकट करते हो, उन्हें अरिहन्त कहते हैं।
सिद्ध किसे कहते हैं ?
1, जिन्होंने आठो कर्मों का क्षय करके अपना आत्म-कल्याण साध लिया हो, तथा 2. जो मोक्ष मे पधार गए हों-उन्हे सिद्ध कहते है।
-आचार्य किसे कहते हैं ?
चतुर्विध सघ के नायक साधुजी, जो स्वय पाच आचार पालते हैं तथा साधु सघ मे आचार पलवाते है।
- उपाध्याय किसे कहते हैं ?
- शास्त्रो के जानकार अग्रगण्य साधुजी, जो स्वय अध्ययन करते हैं तथा साधु-साध्वियों को अध्ययन कराते हैं।
...-साधु किसे कहते है ?
उ.- 1. जो पाच महाव्रत, पाच समिति, तीन गुप्ति आदि का पालन

करते हों। 2. सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र सम्यग्तप द्वारा आत्म-कल्याण साधते हों।

प्र.—नमस्कार मन्त्र मे कितनों को नमस्कार किया है ?

उ.—पाच पदों को नमस्कार किया है।

प्र.—पद किसे कहते हैं ?

उ.—योग्यता से मिले हुए या दिए हुए (पूज्य) स्थान को कहते हैं।

प्र. नमस्कार मन्त्र से क्या लाभ है ?

उ.—सब पापों का नाश होता है।

प्र.- नमस्कार मन्त्र से सब पापों का नाश क्यों होता है ?

उ क्योंकि नमस्कार मन्त्र सर्वश्रेष्ठ मगल है।

प्र. मगल किसे कहते हैं ?

उ. जिससे पापों का नाश हो।

प्र. नमस्कार मन्त्र का स्मरण कब करना चाहिए ?

उ.— जब भी समय मिले। कम-से-कम नित्य प्रातःकाल उठते समय और रात्रि को सोते समय नमस्कार मन्त्र का स्मरण अवश्य करना चाहिए। नए कार्य के प्रारम्भ के समय भी अवश्य स्मरण करना चाहिए।

प्र.—नमस्कार मन्त्र का स्मरण किन भावों से करना चाहिए ?

उ.- 1. अरिहतादि पाचों नमस्कार करने योग्य हैं

2 मैं भी आप जैसा कब बनू गा ?

3 मेरे सभी पापों का नाश हो।

प्र. नमस्कार मन्त्र का स्मरण कितनी बार करना चाहिए ?

उ.—एक, दो, तीन, चार, पाच आदि जितनी बार बन सके, उतनी बार करना चाहिए। प्रतिदिन माला के द्वारा 108 बार और आनुपूर्वी के द्वारा 120 बार नमस्कार मन्त्र स्मरण का नि

ग्रहण करना चाहिए।

–क्या नमस्कार मन्त्र से बढ़ कर कोई मंगल है ?

–नहीं। इन पांच पदों को नमस्कार रूप मंगल सबसे बढ़ कर मंगल है।

– इस नमस्कार मन्त्र का दूसरा नाम क्या है ?

– परमेष्ठी मन्त्र।

परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

–जिन्हें हम धार्मिक दृष्टि से सबसे अधिक चाहते हों और हम जिनके समान बनना चाहते हों।

वन्दना से क्या लाभ है ?

–1. अरिहन्तादि के दर्शन होते है। 2 जीवन मे विनय आता है। 3. ज्ञानादि शीघ्र प्राप्त होते है। 4 धर्म-कार्यों मे स्मृति रहती है। 5. पापों का नाश और पुण्य का लाभ होता है। 6 दुर्गुण नष्ट होते हैं और सद्‌गुण मिलते है। 7 एक दिन हम भी वन्दनीय बनते है।

— हमें पहले सिद्धों को नमस्कार करना चाहिए, क्योंकि वे मोक्ष मे चले गए हैं।

— नहीं, अरिहन्तों ने धर्म को प्रकट किया है, इसलिए वे हमारे लिए सिद्धों से अधिक उपकारी हैं। इसके अतिरिक्त सिद्ध हमें दिखाई भी नहीं देते, उनकी पहिचान भी अरिहन्त ही कराते हैं। अतः अरिहंतों को ही पहले नमस्कार करना चाहिए।

— यदि यह कहना उचित है, तो अरिहंत और सिद्धों से भी आचार्य आदि को पहले नमस्कार करना चाहिए, क्योंकि आज वे हमारे लिए अरिहंतों और सिद्धों से भी विशेष उपकारी हैं।

उ — देव बड़े होते हैं और गुरु छोटे होते हैं, अतः देवों को नमस्कार करना चाहिए और गुरुओं को पीछे नम- करना चाहिए। इसीलिए नमस्कार मन्त्र में पहले देवों को और पीछे तीनों गुरुओं को नमस्कार किया गया है।

देवों में यह देखा जाता है कि जो देव विशेष उपकारी हों, उन्हें पहले वन्दना की जाय। सिद्धों से विशेष उपकारी हैं, अतः नमस्कार मन्त्र में पहले नमस्कार किया गया है और सिद्धों को पीछे न किया गया है।

देवों के समान गुरुओं में भी जो अधिक उ हों, उन्हें पहले नमस्कार करना चाहिए। सबकी सामान्य साधुओं से उपाध्याय अधिक उपकारी हैं, वे पढ़ाते हैं। उपाध्याय से भी आचार्य अधिक उप- क्योंकि वे आचार पलवाते हैं। वे संघ के नायक भी हैं। अतः गुरुओं में सबसे पहले आचार्यों को, पीछे उ ध्यायों को, अन्त में सब साधुओं को नमस्कार क चाहिए।

प्र — क्या सिद्धों को सदा ही अरिहंतों से पीछे ही नमस्का करना चाहिए?

उ.— नहीं। नमस्कार मन्त्र के समान नमोत्थु का पाठ आयेगा, उसको दो बार बोला जाता है। सिद्धों को पहले नमस्कार किया ज है और अरिहंतों को दूसरे नमोत्थुणं से पीछे नमस्क किया जाता है, जिससे यह जानकारी भी हो जाय उपकार-दृष्टि से अरिहंत बड़े हैं, परन्तु गुण की दृष्टि

सिद्ध ही बड़े हैं।

देव बड़े क्यों और गुरु छोटे क्यों ?

1 देवों ने आत्म-शत्रुओं को जीत लिया है, पर गुरुओं को जीतना बाकी है। 2 देवों में केवल-ज्ञान (सम्पूर्ण ज्ञान) आदि प्रकट हो चुके हैं, पर गुरुओं में प्रकट होना बाकी है। 3. अरिहंतों के उपदेश के कारण ही आज गुरु हैं। यदि अरिहंत उपदेश न देते, तो आज हमें गुरु ही नहीं मिलते। 4 गुरु भी देवों को नमस्कार करते हैं और 5 हमें गुरु से देवों को पहले नमस्कार करना सिखाते हैं।

क्या देव से गुरु को सदा ही पीछे नमस्कार किया जाता है ?

जो केवल गुरुपद पर ही हों, उन्हें सदा देव से पीछे ही नमस्कार किया जाता है। परन्तु जो देवपद पर भी हों और गुरुपद पर भी हों, उन्हें नमस्कार मन्त्र में पहले नमस्कार किया जाता है। अरिहंत देवपद पर तो हैं ही, उनके अपने हाथ से दीक्षित शिष्यों के लिए वे गुरुपद पर भी हैं। इस प्रकार दोनों पद वाले अरिहंतों को नमस्कार मन्त्र में सिद्धों से पहले नमस्कार किया जाता है।

- क्या अरिहंत और सिद्ध दोनों एक स्थान पर खड़े मिल सकते हैं ?

- नहीं। क्योंकि अरिहंत इस लोक में रहते हैं और सिद्ध मोक्ष में पधारे हुए होते हैं।

तिक्खुत्तो : वन्दना पाठ

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि। वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि। मत्थएण वंदामि।

शब्दार्थ :

तिक्खुत्तो = तीन बार। आयाहिणं = दक्षिण बाजू से (दाहिनी ओर से)। पयाहिणं = प्रदक्षिणा। करेमि = करता हूँ।

वंदामि = वन्दना स्तुति करता हूँ। नमंसामि = नमस्कार करता हूँ। सक्कारेमि = सत्कार करता हूँ। सम्माणेमि = सम्मान करता हूँ।

कल्लाणं = (आप) कल्याण रूप हैं। मंगलं = मंगल रूप देवयं = देव रूप हैं। चेइयं = ज्ञान रूप हैं।

पज्जुवासामि = पर्युपासना करता हूँ। मत्थएण = मस्तक वन्दामि = वन्दना करता हूँ।

तिक्खुत्तो प्रश्नोत्तर

प्र.—नमस्कार की विशेष विधि क्या है ?

उ.—पांचों अंग झुका कर नमना।

प्र.—पांच अंग कौन-कौन से ?

उ.—दो घुटने, दो हाथ और एक मस्तक।

प्र.—पांच अंग कैसे झुकाना चाहिए ?

उ.—पहले तीन बार प्रदक्षिणा करना चाहिए। पीछे दोनों घुट

को भूमि पर झुकाने के लिए दोनों हाथों को भूमि पर रखना चाहिए। पीछे दोनों घुटने भूमि पर टिकाना चाहिए। पीछे दोनों हाथ जोड़ कर ललाट पर लगाते हुए स्तुति आदि करना चाहिए। पीछे जुड़े हुए दोनों हाथों सहित मस्तक को भूमि तक झुकाना चाहिए। इस प्रकार पाँचों अंग झुकाना चाहिए।

. प्रदक्षिणा तीन बार क्यों की जाती है ?

.—1. अपनी पहली बनाई हुई श्रद्धा और भावना की दृढ़ता प्रकट करने के लिए। 2 वन्दनीय में रहे हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनों गुणों को वन्दन करने के लिए।

—वन्दना का अर्थ स्तुति है या नमस्कार ?

- वन्दना का प्रसिद्ध अर्थ नमस्कार है, परन्तु यहा और कहीं-कहीं वन्दना का अर्थ स्तुति भी होता है।

सत्कार किसे कहते हैं ?

.—(क) अरिहंतादि की स्तुति करना, (ख) उनका स्वागत करना, (ग) उन्हे आहार, वस्त्र, पात्र आदि देना।

सन्मान किसे कहते हैं ?

— (क) अरिहंतादि को अपने से बड़ा मानना, (ख) उन्हे नमस्कार करना, (ग) उनसे अपना आसन नीचा रख कर अपने से उन्हे ऊंचा स्थान देना।

.—तिक्खुत्तो की पाटी में सत्कार-सन्मान कैसे किया गया ?

—आप कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और ज्ञानवान् हैं—यह कह कर स्तुति करते हुए सत्कार किया गया है तथा पचांग नमस्कार करके सन्मान किया गया है।

—कल्याण और मगल किसे कहते हैं ?

—पुण्य मिलना या सद्‌गुण प्रकट होना कल्याण है तथा पाप खपना या दुर्गुण नष्ट होना मगल है।

मे होने पर आज्ञा के अनुसार सब साथ मे मिल कर एक स्वर और एक समय में वन्दना करनी चाहिए।
वन्दना कितनी बार करनी चाहिए ?
तीन बार करनी चाहिए। 108 बार भी की जा सकती है। भावना की अपेक्षा 1008 बार भी की जा सकती है।
- वन्दना मे क्या लाभ है ?
- 1. अरिहतादि के दर्शन होते हैं। 2 जीवन मे विनय आता है। 3 ज्ञानादि शीघ्र प्राप्त होते है। 4. धर्म कार्यों मे स्मृति रहती है। 5 पापो का नाश और पुण्य का लाभ होना है। 6. दुर्गुण नष्ट होते हैं और सद्गुण मिलते हैं। 7. एक दिन हम भी वन्दनीय बनते है।

इच्छाकारेणं : आलोचना का पाठ

इच्छाकारेणं सदिसह भगव! इरियावहियं पडिक्कमामि इच्छं, इच्छामि पडिक्कमिउ ॥ 1 ॥ इरियावहियाए विराहणाए ॥ 2 ॥ गमणागमणे ॥ 3 ॥ पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसा - उत्तिगपणग - दग - मट्टी - मक्कडा - संताणासंकमणे ॥ 4 ॥ जे मे जीवा विराहिया ॥ 5 ॥ एगिंदिया, बेइंदिया तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया ॥ 6 ॥ अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं, संकामिया, जीवियाओ, ववरोविया ॥ 7 ॥ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थ :

आज्ञा के लिए प्रार्थना

भगवं=हे भगवान् ! इच्छाकारेण=आप अपनी इच्छा से
संदिसह=आज्ञा कीजिए ।

अपनी इच्छा

मैं । इरियावहियं=ईर्यापथिकी क्रिया का (चलने मे
वाली क्रिया का) । पडिक्कमामि=प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ ।

गुरुदेव की आज्ञा मिलने पर

इच्छं=आपकी आज्ञा प्रमाण है ।

उद्देश्य

इरियावहियाए=मार्ग में चलने में हुई । विराहणाए=विरा-
धना से । पडिक्कमिउं=प्रतिक्रमण करने की । इच्छामि=इच्छा
करता हूँ ।

विराधित जीवों के कुछ नाम

गमणागमणे=जाने-आने में । पाणक्कमणे=किसी (द्वीन्द्रिय
त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) प्राणी को दबाया हो । बीयक्कमणे=बी
को दबाया हो । हरियक्कमणे=हरित (वनस्पति) को दबाया हो
ओसा-ओस । उत्तिंग-कीड़ी नगरा । पणग=पाँच रंग की का
(सेवाल फूलण) । दग=सचित्त पानी । मट्टी=सचित्त मिट्टी या

कडा संताणा=मकड़ी के जाले को। संकमणे=कुचला हो।
आदि प्रकार से,

विराधित सभी जीव

मे=मैने। जे=जिन। जीवा=जीवों की। विराहिया=विरा-
ना की हो। चाहे वे,

विराधित जीवों की पांच जाति

1. एगिंदिया=एक इन्द्रिय वाले। 2. बेइंदिया=दो इन्द्रिय
ले। 3. तेइंदिया=तीन इन्द्रिय वाले। 4 चउरिंदिया=चार
न्द्रिय वाले। या 5 पंचिंदिया=पांच इन्द्रिय वाले हो। उनको,

विराधना के दस प्रकार

1. अभिहया=सम्मुख आते हुओं पर पैर पड गया हो या
हे हाथ से उठा कर दूर फेंक दिए हो। 2 वत्तिया=धूल आदि से
 हो। 3 लेसिया=मसले हो (भूमि पर रगड़े हों)।
 संघाइया=इकट्ठे किए हों। 5 संघट्टिया=छुए हो।
 परियाविया=परिताप (कष्ट) पहुँचाया हो। 7 किलामिया=
र हुए जैसे कर दिये हो। 8. उद्दविया=भयभीत किए हों।
 ठाणाओं=एक स्थान से, ठाणं=अन्य स्थान पर। संकामिया=
ा हो। 10. जीवियाओ=जीवन से, ववरोविया=रहित किये
 । तो,

प्रतिक्रमण

तस्स=उनका। मि=मेरा। दुक्कडं=दुष्कृत (पाप)।
च्छा=मिथ्या (निष्फल) हो।

'इच्छाकारेण' प्रश्नोत्तर

प्र - 'इच्छाकारेण' सामायिक का कौनसा पाठ है ?

उ.—तीसरा पाठ है।

प्र—यह पाठ कब बोला जाता है ?

उ. सामायिक लेते समय तिक्खुत्तो से वन्दना करके तथा साम पालते समय तीन नमस्कार मन्त्र पढ़ने के पश्चात् बोला है तथा सामायिक लेते समय कायोत्सर्ग में भी बोला जाता

प्र. इच्छाकारेण के पाठ का दूसरा नाम क्या है ?

उ—आलोचना का पाठ।

प्र.—इसे आलोचना का पाठ क्यों कहते हैं ?

उ.—इसमें जीव-विराधना की आलोचना की जाती है, इसलिए।

प्र.—विराधना किसे कहते है ?

उ. - 1. जीवों को दु ख पहुचाने वाली क्रिया को तथा, 2. जीवों दु.ख पहुंचना।

प्र.—क्या चलने से ही विराधना होती है ?

उ.—नहीं। उठने से, बैठने से, हाथ-पाव पसारने से, सिकोड़ने आदि क्रियाओं से भी जीव-विराधना होती है।

प्र.—तब इच्छाकारेण से चलने से होने वाली जीव-विराधना की आलोचना क्यों की है ?

उ.—जैसे 'रोटी खाई' - इस वाक्य मे रोटी शब्द से शाक, द चावल आदि सब आ जाते हैं। इसी प्रकार यहा चलने होने वाली जीव-विराधना की आलोचना से सभी प्रव से होने वाली जीव-विराधना की आलोचना की गई सम चाहिए।

प्र.—जीव रक्षा के लिए यदि किसी जीव को एक स्थान से दूस

सुरक्षित स्थान पर पूंज कर हटावे, तो क्या विराधना का पाप लगता है ?

—नही . बिना कारण सुख से बैठे जीवों को इधर उधर पूंज कर हटाना ठीक नही है। पर रक्षा के लिये तो उन्हें पूंज कर एक स्थान से दूसरे सुरक्षित स्थान पर हटाना ही चाहिए। इससे उन्हें कष्ट तो होता ही है पर इसके लिए दूसरा उपाय नही है। जो इससे थोडी विराधना होती है, उसके लिए 'मिच्छा मि दुक्कड' देना (कहना) चाहिए।

—क्या किसी का मन दु खाना तथा कटु वचन बोलना विराधना नही है ?

—है। इसलिए किसी का मन दु खे ऐसा काम भी नहीं करना चाहिए तथा ऐसी वाणी भी नही बोलनी चाहिए। [illegible] मे यद्यपि शरीर को कष्ट पहुँचाने से होने वाली 10 [illegible] विराधना का ही 'मिच्छा मि दुक्कड' दिया है ([illegible] पर उसमे मन-वचन का विराधना का मिच्छा मि [illegible] समझ लेना चाहिए।

—क्या 'मिच्छा मि दुक्कड' कहने से ही पाप नि[illegible] है (धुल जाता है) ?

—नही। बिना मन केवल जीभ से कहने से पाप [illegible] जाता। मन के पश्चाताप के साथ कहने से [illegible] होता है। अत. 'मिच्छा मि दुक्कड' मन [illegible] कहना चाहिए।

जीव-विराधना न हो इसका उपाय [illegible]

—'यतना रखना'।

—'यतना' किसे कहते हैं ?

—1. जीव-विराधना का प्रसग न [illegible]

प्रमा का प्रसंग प्रायः नहीं आता।

–जीव-विराधना का प्रसग आने पर विराधना टालने के लिए क्या प्रयत्न करना चाहिए?

–अधिक जीव-विराधना न हो –इसका प्रयत्न करना चाहिए। जैसे –पृथ्वीकाय की यतना के लिए जाते-आते पैर मे मिट्टी लग जाय, तो पैरो को पूंज कर बैठना चाहिए। अप्काय की यतना के लिए कपड़ा पानी से भीग जाय, तो उसे एक ओर रख देना चाहिये। रात्रि को बाहर जाते-आते मस्तक और अन्य अग कपड़े से भली भांति ढक कर जाना चाहिए, (जिससे रात्रि को सूक्ष्म बरसने वाली वर्षा के जीवों की मस्तक तथा अन्य अगों की ऊष्णता से विराधना न होवे)। तेजस्काय की यतना के लिए वस्त्र मे कोई चिनगारी लग जाय, तो यतना से दूर कर देना चाहिए। वायुकाय की यतना के लिए वायु मे कपड़े उड़ने लगें, तो वायुरहित स्थान मे जाकर बैठ जाना चाहिए। वनस्पतिकाय की यतना के लिए पत्ते, बीज आदि आ गिरें, तो धीरे-से उठा कर एक ओर जाकर रख देना चाहिए, पर बैठे-बैठे फेंकना नहीं चाहिए। त्रसकाय की यतना के लिए कीड़ी, मकोड़ो आदि आसन या शरीर पर चढ़ जाय, तो देख-पूंज कर अलग करना चाहिए। कुत्ते आदि को शब्द से या धीरे-से ही दूर करना चाहिए। दिन को देख कर तथा रात्रि मे देख-पूंज कर उठना-बैठना तथा सोना चाहिए। शरीर को देख-पूंज कर खुजलाना चाहिए। ज्ञान-चर्चा या बातचीत करते हुए कोई कटु शब्द निकल जाय या कभी किसी के मन के विपरीत कोई काम हो जाय, तो हाथ जोड़ कर नम्रता से क्षमा-याचना करना चाहिए। इत्यादि प्रयत्न करने से अधिक होने वाली विराधना टल जाती है।

—इच्छाकारेण मे मात्र केवल जीव-विराधना की आलोचना जाती है ?

—नहीं। अट्ठारह पापों मे जीव-विराधना (हिंसा) का पहला (मुख्य) है। इसलिए 'इच्छाकारेण' में जो विराधना की आलोचना की है, उसमें शेष रहे हुए 17 की भी आलोचना की गई समझनी चाहिए। (यहा भी दिया हुआ 'रोटी खाई' का दृष्टान्त समझ लेना चाहिए)

तस्सउत्तरी : उत्तरीकरण का पाठ

तस्स-उत्तरी-करणेण, पायच्छित्त-करणेण, विसोहि-क[illegible] सल्ली-करणेण, पावाण कम्माण, निग्घायणट्ठाए, [illegible] उस्सग्ग। अन्नत्थ ऊससिएण, नीससिएण, खासिएण, [illegible]भाइएण, उड्डुएण, वाय-निसग्गेण, भमलीए, पित्त-मुच्छा[illegible] सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं, सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं, सुहुमेहिं [illegible] संचालेहिं।2। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो अविराहिओ [illegible] मे काउस्सग्गो।3। जाव अरिहंताण भगवंताण णमोक्कारे[illegible] पारेमि।4। ताव काय, ठाणेण मोणेण झाणेण[illegible] वोसिरामि।5।

शब्दार्थ :

किसके लिए ?

1. तस्स—उसकी (उस पाप सहित आत्मा की)। उ[illegible] विशेष उत्कृष्टता। करणेण=करने के लिए। 2 पायच्छि[illegible] प्रायश्चित्त। 3. विसोहि=विशुद्धि तथा 4 विसल्ली=शल्य (

। करणेए=करने के लिए। 5. पावाण=आठों या (अट्ठारह पाप। कम्माण=कर्मों का। निग्घायणट्ठाए=नाश करने ए।

क्या करता हूँ ?

काउसग्ग=कायोत्सर्ग। ठामि=करता हूँ?

किन आगारों को छोड़ कर ?

1. ऊससिएण=उच्छ्वास (ऊंचा श्वास)। 2. नीससिएण श्वास (नीचा श्वास)। 3. खासिएण=खांसी। 4 छीएण= । 5 जभाइएण=जभाई (उबासी)। 6. उड्डुएण=उगाल कार) 7 वायनिसग्गेण=अधोवायु। 8 भमलीए=भ्रम (पित्त उठाव से होने वाला चक्कर। 9. पित्तमुच्छाए=पित्त-विकार मूर्च्छा। 10 सुहुमेहि=सूक्ष्म (थोडा, हल्का) 11 अगसचालेहि ग का सचार (अगों का फडकना, रोमांच होना, हिलना)। सेल=श्लेष्म (कफ) का। सचालेहि=सचार। 13. दिट्ठि= (आखो का, पलको का)। सचालेहि=सचार।

एवमाइएहि=इत्यादि। आगारेहि=आगारो को। अन्यत्र ड़कर।

क्या हो ?

मे=मेरा। काउसग्गो=कायोत्सर्ग। अभग्गो=थोड़ा भी डित न हो। अविराहिओ=पूरा नष्ट न हो।

कब तक ?

जाव=जब तक। अरिहंताणं=अरिहंत। भगवंताणं=भगवान् को। नमुक्कारेणं=नमस्कार करके (णमो अरिहंताणं कह कर)। न=(कायोत्सर्ग को) न। पारेमि=पार लूं।

तब तक कायोत्सर्ग कैसे ?

ताव=तब तक। कायं=काया को। ठाणेणं=(एक स्थान पर) स्थिर करके। मोणेणं=(वचन से) मौन करके। झाणेणं=(मन से) ध्यान करके (रहूंगा)।

अप्पाणं=(पहले की अपनी पापी) आत्मा को। वोसिरामि=वोसिराता हूं।

तस्सउत्तरी प्रश्नोत्तर

प्र. 'तस्सउत्तरी' सामायिक सूत्र का कौनसा पाठ है ?
उ. चौथा पाठ है।
प्र.—यह पाठ कब बोला जाता है ?
उ. 'इच्छाकारेण' के बाद।
प्र. यह पाठ बोल कर क्या किया जाता है ?
उ. कायोत्सर्ग।
प्र.—कायोत्सर्ग में क्या बोला जाता है ?
उ.—सामायिक लेते समय इच्छाकारेण और पारते समय भी बोला जाता है।
प्र.—इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?
उ.—उत्तरीकरण का पाठ।

प्र.—इसे उत्तरीकरण का पाठ क्यों कहते हैं ?

उ.—इसमें आत्मा को विशेष उत्कृष्ट बनाने के लिए कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा की जाती है, इसलिये।

प्र.—प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

उ.—1. जिससे पाप कटकर आत्मा शुद्ध बने तथा 2 पाप कटकर आत्मा का शुद्ध बनना।

प्र. विशुद्धि किसे कहते हैं ?

उ. अच्छे परिणामों से (विचारों से) आत्मा का विशेष शुद्ध बनना।

प्र. शल्य (मोक्ष मार्ग के काटे) कितने हैं ?

उ.—तीन हैं 1. माया-शल्य (क्रोध, मान, माया, लोभ) 2 निदान शल्य (धर्मकरणी का मोक्ष के अलावा फल चाहना) 3. मिथ्यादर्शन-शल्य (मिथ्यात्व)।

प्र.—आगार (आकार) किसे कहते हैं ?

उ.—प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) में रहने वाली 1 मर्यादा तथा 2. छूट को।

प्र.—कायोत्सर्ग में आगार क्यों रखे जाते हैं ?

उ.—क्योंकि 1. जीव-रक्षा आदि के लिये कायोत्सर्ग बीच मे छोड़ना पड़ता है तथा 2 कायोत्सर्ग में श्वास आदि रोके नही जा सकते।

प्र. प्रकट 'इच्छाकारेणं' से एक बार पाप धुल जाने पर दुबारा कायोत्सर्ग से और उसमे "इच्छाकारेणं" या 'लोगस्स' से पापों का नाश करने की आवश्यकता क्या है ?

उ.—जैसे अधिक मैला कपड़ा एक बार पानी से धोने से पूरा स्वच्छ नही होता, उसे दुबारा क्षार (सोड़ा, साबुन आदि) लगा कर धोना पड़ता है। उसी प्रकार आत्मारूप कपड़ा अधिक पाप वाला होने पर प्रकट आलोचनारूप पानी से पूरा धुल नही

पाता इसलिये उसे कायोत्सर्ग और उसमें 'इच्छाकारे-' लोगस्स-रूप क्षार लगाकर दुबारा पूरा स्वच्छ बनाना है।

प्र.—मच्छर आदि काटने लगें, तो इच्छाकारेणं' या लोगस्स होने से पहले ही 'णमो अरिहन्ताणं' कह कर कायोत्सर्ग जा सकता है क्या ?

उ.—नहीं। मच्छरादि काटने लगे, तो कष्ट सहन करना चाहि कष्ट आने पर उन्हें सहन करने पर ही सच्चा कायोत्सर्ग है। ऐसा कायोत्सर्ग ही सच्चा प्रायश्चित्त है। वही पापों पूरा धोकर आत्मा को पूरा विशुद्ध बना सकता है। मच्छरादि के काटने से कायोत्सर्ग पाल लिया जाय, तो कायोत्सर्ग का भंग कहलाता है।

प्र.—'इच्छाकारेणं' या 'लोगस्स' पूरे गिनने के बाद ही पाला जाता है, तो पारने के लिए 'णमो अरिहन्ताणं' क आवश्यकता क्या है ?

उ.—1. कायोत्सर्ग आदि जो भी प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) जितने के लिए किए जाते हैं, उसमें कुछ और समय बढाने का है, उसे पालने के लिए। यह नियम इसलिए है कि सम पहले प्रत्याख्यान पालने से जो व्रत भंग हो सकता है, वह न सके तथा 2. व्यवस्थित कार्य-पद्धति के लिये।

प्र.—जहां कायोत्सर्ग किया हो, वहां आग लग जाय, बाढ़ आ जा डाकू लूटने लगें, राजा का उपद्रव हो जाय, भीत, छत गिरने लगे, सर्प, सिंह आ जाय तो उस समय प्राण-रक्षा लिए वहां से हटकर दूर जाना पड़े, तो कायोत्सर्ग का भंग हो है या नहीं ?

उ.—जहां तक हो सके, मृत्यु तक का भी भय छोड़कर कायोत्सर्ग

दृढ रहना श्रेष्ठ है. परन्तु यदि कोई प्राण-रक्षा के लिए ऐसा कर ले, तो कायोत्सर्ग भग नही माना जाता ।
प्राणी-रक्षा के लिए—जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ती हो, तो बिल्ली से छुड़ाकर चूहे की रक्षा के लिए कायोत्सर्ग बीच में ही छोडा जा सकता है या नही ? अथवा स्वधर्मी की सेवा के लिए-जैसे वे मूर्च्छा खाकर गिर रहे हो या गिर पड़े हो, तो उन्हें उठाने--करने के लिए कायोत्सर्ग बीच मे ही छोडा जा सकता है या नही ?
-1. प्राणी-रक्षा, 2. स्वधर्मी-सेवा आदि के लिए तत्काल कायोत्सर्ग बीच में ही छोड़ देना चाहिये । इसमे कायोत्सर्ग भग नही होता, क्योकि कायोत्सर्ग मे ऐसी मर्यादा रक्खी जाती है । परन्तु इन कार्यों को समाप्त करके पुन कायोत्सर्ग कर लेना चाहिये ।
कायोत्सर्ग समाप्त होने पर क्या बोलना चाहिए ?
-एक प्रकट नमस्कार मन्त्र तथा ध्यान पारने का पाठ ।
-ध्यान पारने का पाठ बताइए ।
-कायोत्सर्ग मे आर्त्त-ध्यान या रौद्र ध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान (या शुक्ल-ध्यान) न ध्याया हो, कायोत्सर्ग मे मन-वचन-काया चलित हुई हो, तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।'

लोगस्स : चतुर्विंशतिस्तव का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म-तित्थयरे जिणे ।
अरिहन्ते कित्तइस्स, चउवीस पि केवली ॥ 1 ॥
उसभ मजिय च वन्दे, सभव-माभिणदण च सुमइ च ।
पउमप्पह सुपास, जिण च चन्दप्पह वन्दे ॥ 2 ॥

=और। 8 चंदप्पहं=चन्द्रप्रभ । जिणं=जिनको। वंदे=वंदना करता हूं। च=और। 9. सुविहि-सुविधि (नाथ) ।पुप्फदन्त= (सफेद कमल के पुष्प के समान स्वच्छ दांत होने से) जिनका दूसरा नाम पुष्पदन्त है, उनको। 10 सीअल=शीतल (नाथ)। 11. सिज्जंस श्रेयांस (नाथ)। 12 वासुपुज्ज=वासुपूज्य। 13. विमल=विमल (नाथ)। च=और। 14 अणंत=अनन्त (नाथ) । जिणं=जिन। 15 धम्मं=धर्म (नाथ)। संतिं=शान्ति (नाथ) वंदामि=वंदना करता हूं। 17. कुंथुं=कुन्थु (नाथ)। च=और। 28 अरं= अर (नाथ) 19 मल्लि=मल्लि (नाथ)। 20. मुणिसुव्वय= मुनिसुव्रत। च=और। 21 नमि-नमि (नाथ)। जिणं= जिनको। वंदे=वंदना करता हूं। 22 रिट्ठनेमि-अरिष्टनेमि। 23. पास=पार्श्व (नाथ)। च=और । तह=उसी प्रकार । 24 वद्धमाणं=वर्द्धमान (स्वामी) को। वंदामि=वंदना करता हूं।

प्रार्थना

एवं=इस प्रकार । मए=मेरे द्वारा। अभित्थुआ=स्तुति किये गये। विहुय-रय-मला=जिन्होंने पाप-कर्म-रूप रज-मैल धो डाला। पहीण-जर-मरणा=जरा (बुढ़ापा) और मरण नष्ट कर दिये। (वे)। चउवीसं=चौबीस। पि=ही। जिणवरा=जिनवर। तित्थयरा=तीर्थंकर। मे=मुझ पर। पसीयंतु=प्रसन्न हों।

कित्तिय=जिनका (देवताओं के इन्द्र, असुरों के इन्द्र तथा नरेन्द्र तीनों लोक) ने कीर्तन किया है। वंदिय=वन्दन किया है। महिया=भाव पूजन किया है (ऐसे)। जे=जो। ए=ये। लोगस्स =(तीनों) लोक में। उत्तमा=उत्तम। सिद्धा=सिद्ध है (वे मुझे)। आरुग्ग=सिद्धत्व (मोक्ष और उसके उपाय)। बोहि=1. बोधि (सम्यक्त्व) का। लाभ=लाभ (और) उत्तमं=उत्तम। वरं=श्रेष्ठ। समाहिं=2 समाधि (चारित्र)। दिंतु=देवें।

चंदेसु=चन्द्रों से भी । निम्मलयरा=अधिक निर्मल
आइच्चेसु=सूर्यों से भी । अहियं=अधिक । पयासयरा=प्रकाश
करने वाले । वर=श्रेष्ठ । सागर=सागर (के समान) गंभीर
गंभीर । सिद्धा=सिद्ध । मम=मुझे । सिद्धि=सिद्धि (मोक्ष
दिसंतु=दिखावे (देवें) ।

लोगस्स प्रश्नोत्तर

प्र —'लोगस्स' सामायिक सूत्र का कौनसा पाठ है ?
उ पाचवा पाठ है ।
प्र —यह पाठ कब बोला जाता है ?
उ —ध्यान पारने का पाठ बोलने के बाद तथा सामायिक सूत्र पार
समय यह कायोत्सर्ग मे भी बोला जाता है ।
प्र इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?
उ चतुर्विंशतिस्तव का पाठ ।
प्र इसे चतुर्विंशतिस्तव का पाठ क्यो कहते है ?
उ इसमे चौबीस तीर्थंकरो की स्तुति की जाती है, इस
प्र —'लोक का उद्योत करने वाले' का भाव क्या है ?
उ विश्व का ज्ञान कराने वाले ।
प्र यहां कीर्तन किसे कहा है ?
उ मुख मे । नाम स्तुति करने को और 2. गुण
करने को ।
प्र.—यहां वन्दन किसे कहा है ?

- पूज्य मानकर (स्मरणीय और स्तवनीय मानकर) काया (पचांग नमाकर) से नमस्कार करना।

—यहां पूजन किसे कहा है ?

—मन से 1 नाम स्मरण करने को और 2 गुण-स्मरण करने को।

—क्या तीर्थंकरो की फूलो से पूजा करना 'पूजन' नही कहलाता ?

—नहीं। तीर्थंकरादि के सामने जाते हुए पहला अभिगमन है— सचित्त का त्याग। जब सचित्त को लेकर तीर्थंकरादि के सामने जाने का भी निषेध है, तब सचित्त फूलो से उनकी पूजा करना 'पूजन' कैसे कहला सकता है ?

—कीर्त्तन तथा वन्दन से क्या लाभ होता है ?

—1. ज्ञान बढता है। जैसे—गुणो के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि कौनसे गुणो वाला देव सच्चा देव हो सकता है ? तथा नामों के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि ऐसे गुणों वाले सच्चे देव कौन हुए ?

2. श्रद्धा बढती है। जैसे—इन गुणों वाले देव ही सच्चे देव हैं तथा इन नामों वाले देव हो सच्चे देव हुए।

3. नये पाप-कर्म बधते हुए रुकते हैं। क्योकि मन में स्मरण चलने से मन मे आहारादि की सज्ञाएं उत्पन्न नही होती तथा वचन से स्तुति होती रहने पर वचन से स्त्री आदि विकथाएं नही होती।

4. पुण्य बधते हैं। क्यों कि स्मरण मन का शुभ योग है तथा स्तुति वचन का शुभ योग है।

5. पुराने पाप-कर्म क्षय होते हैं। क्योकि स्मरण तथा स्तुति, स्वाध्याय तथा धर्म-ध्यान-रूप हैं।

प्र —क्या तीर्थंकरों से सांसारिक पदार्थ की प्रार्थना करना
है ?

उ —नहीं। लोगस्स में की गई प्रार्थना के समान मोक्ष की प्रा
आये, सम्यक्त्व जागे, चारित्र धारण हो, मोक्ष प्राप्त हो–
ही प्रार्थना करनी चाहिए।

प्र. —यदि कोई सांसारिक प्रार्थना करता हो तो ?

उ —करना छोड़ दे। न छोड़ सके, तो सांसारिक प्रार्थना को
तन। समझे और धार्मिक प्रार्थना को ही सच्ची प्रार्थना समझे

प्र —तीर्थंकर चन्द्रों से अधिक निर्मल कैसे ?

उ —चन्द्र में कुछ कलंक (कालापन) दीखता है पर तीर्थंकरों में
घाति-कर्म-रूप कलंक नहीं होता, इसलिए वे चन्द्रों से अ
निर्मल है।

प्र.—तीर्थंकर सूर्यों से अधिक प्रकाश करने वाले कैसे ?

उ —सूर्य कुछ ही क्षेत्र तक प्रकाश करता है पर तीर्थंकर अपने के
ज्ञान से सब क्षेत्रों को जानते हैं और प्रकाशित करते हैं। इ
लिए तीर्थंकर सूर्यों से अधिक प्रकाश करने वाले हैं।

●

करेमि भन्ते : प्रत्याख्यान का पाठ

करेमि भन्ते! सामाइयं। सावज्ज-जोगं पच्चक्खामि, ज
नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा
वयसा, कायसा। तस्स भंते पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि
अप्पाणं वोसिरामि।

र्थ :

प्रतिज्ञा

भंते=हे भगवन् ! सामाइयं=सामायिक । करेमि=
हूं ।

द्रव्य से

सावज्जं=सावद्य । जोगं=जोग का । पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान
हूं ।

क्षेत्र से

सम्पूर्ण लोक प्रमाण प्रत्याख्यान करता हू ।

काल से

जाव – जब तक । नियमं=इस नियम का । पज्जुवासामि=
करता हू, तब तक ।

भाव से

दुविहं=दो प्रकार के करण में । तिविहेणं=तीन प्रकार के
में । न करेमि=सावद्य योग को नहीं करूंगा । न कारवेमि –
रे से कराऊंगा । मणसा=मन से । वयसा=वचन से । कायसा=
से ।

पहले किये हुए पाप के विषय में

भंते=हे भगवन् ! तस्स=उसका (इस सामायिक करने के

1. सभी आत्माएं सिद्ध के समान हैं। इसलिए जो सिद्धों का स्वभाव है, वही आत्मा का स्वभाव है। परन्तु हिंसा आदि करना, ...दि करना, क्रोधादि करना, कुदेवादि पर श्रद्धा करना आत्मा का स्वभाव नहीं है। इसलिए अट्ठारह पाप विभाव हैं।

2. आत्मा के स्वभाव को पाने का अर्थात् सिद्ध बनने का ...य है धर्म। पाप से धर्म में विघ्न पड़ता है और धर्म में विघ्न ... पर मोक्ष-प्राप्ति में विघ्न पड़ता है। इसलिए अट्ठारह पाप ...विभाव' हैं।

–सामायिक में अट्ठारह पाप (सावद्य योग) न करने का नियम कब तक पालना पड़ता है?

जितने भी मुहूर्त और उसके उपरान्त का नियम लिया जाय, उतने समय तक नियम पालना पड़ता है। जैसे, एक मुहूर्त, दो मुहूर्त या तीन मुहूर्त और उसके उपरान्त जब तक सामायिक न पालें तब तक नियम पालना पड़ता है।

मुहूर्त किसे कहते हैं?

–एक दिन-रात के 30 वें भाग को अर्थात् 48 मिनिट को मुहूर्त कहते हैं।

–करण किसे कहते हैं?

–योगों की क्रिया को। 1 करना, 2 कराना और 3. करते हुए का अनुमोदन करना, अर्थात् भला जानना--ये तीन 'करण' है।

योग किसे कहते हैं।

करण के साधन को। 1. मन, 2 वचन और 3 काया - ये तीन 'योग' हैं।

–क्या सामायिक का नियम जीवन भर तक के लिए और तीन करण तीन योग से नहीं किया जा सकता?

उ. लिया जा सकता है । इस प्रकार नियम लेने को दीक्षा क
जाता है ।

प्र. दीक्षा में और सामायिक में क्या अन्तर है ?

उ अट्ठारह पाप इन नव प्रकारों से होता है

प्र —1 मन से करना, 2 कराना और 3 अनुमोदन करना
4 वचन से करना, 5. कराना और 6 अनुमोदन करना
7. काया से करना, 8 कराना और 9 अनुमोदन करना
इन नव प्रकारों को 'नवकोटि' कहते हैं । दीक्षा में 18 पापों का नवकोटि से प्रत्याख्यान करना पड़ता है और सामायिक में छह कोटि या आठ कोटि से प्रत्याख्यान करना पड़ता है छह कोटि में तीसरी छठी और नवमी ये तीन कोटिया खुली रहती हैं तथा आठ कोटि में मन से अनुमोदन की एक तीसरी कोटि खुली रहती है ।

● दीक्षा जीवन भर के लिए ही होती है, जबकि सामायिक इच्छानुसार 'एक मुहूर्त उपरात' आदि के लिए होती है ।

प्र. -प्रतिक्रमण किसे कहते हैं !

उ अतिचार से या पाप से लौटना, पुन: धर्म में आना ।

● दीक्षापाठ

करेमि भंते ! सामाइय ।।1।। सव्व सावज्ज जोग पच्चक्खामि ।। ।। जावज्जीवाए ।।3।। तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतंपि अण्णं न समणुजाणामि ।।4।। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।।5।।

. निन्दा किसे कहते हैं ?

. 1. अल्प रूप से निन्दा करना, 2 अट्ठारहं पापों की एक साथ निन्दा करना, 3 एक बार निन्दा करना, 4 आत्मसाक्षी से निन्दा करना।

.—गर्हा किसे कहते हैं ?

. 1. विशेष रूप से निन्दा करना, 2 एक-एक पाप को भिन्न-भिन्न निन्दा करना, 3 बारम्बार निन्दा करना, 4 देव या गुरु साक्षी से निन्दा करना।

. वोसिराने का अर्थ क्या है ?

.—छोड़ना, त्यागना।

. पापी आत्मा और धर्मी आत्मा - इस प्रकार क्या एक ही जीव की दो क्रियाएं होती हैं ?

उ.—प्रत्येक की आत्मा एक ही होती है, परन्तु जब आत्मा पाप की भावना और पाप की क्रिया करती है, तब वह पापी आत्मा कहलाती है और जब आत्मा धर्म की भावना और धर्म की क्रिया करती है, तब वही आत्मा धर्मी आत्मा कहलाती है। पापी आत्मा को वोसिराने का अर्थ है - पाप-भावना और पाप-क्रिया छोड़ना।

प्र.—क्या घर, व्यापार, समाज, राज्य आदि सबका कार्य करते हुए सामायिक नहीं हो सकती ?

उ.—सामायिक में केवल अनुमोदन की ही कोटि खुली रहती है, शेष रही कोटियों से हिंसा आदि सभी पापों को पूर्ण रूप से त्यागना पड़ता है।

घर, व्यापार, समाज आदि के काम करते हुए मोटी-मोटी

यदि साधु, साध्वी का योग न हो, तो जानकार या बड़े श्रावक, श्राविका की आज्ञा लेनी चाहिये। किसी का भी योग न होने पर उत्तर दिशा, पूर्व दिशा या ईशान कोण में वन्दना-विधि करके भगवान् महावीर स्वामीजी से आज्ञा लेनी चाहिये।

क्या सामायिक लेने के लिए केवल यह प्रत्याख्यान का पाठ पढ़ना पड़ता है ?

नहीं। इसके अतिरिक्त और भी विधि करनी पड़ती है। वह अगले पाठों में बताई जायगी।

जब तक अन्य पाठ कठस्थ न हों और विधि की जानकारी न हो, तब केवल इस पाठ को पढ़कर ही कई सामायिक व्रत ग्रहण करते है।

-सामायिक पालने की विधि क्या है ?

-वह भी अगले पाठों में बताई जायगी।

जब तक उसके लिए आवश्यक पाठ कठस्थ न हो और विधि न जाने, तब तक ली हुई सामायिक तीन नमस्कार मन्त्र गिनकर या केवल सामायिक पारने का पाठ पढ़कर ही कई सामायिक व्रत पालते हैं।

-सामायिक में क्या लाभ हैं ?

-1. अट्ठारह पाप छूटते हैं। 2. समभाव की प्राप्ति होती है। 3. एक मुहूर्त साधु-सा जीवन बनता है। 4. जैसे दुले समय मे बड़े पशु, पक्षी, मनुष्य आदि की दया और रक्षा की भावना होती है, वैसे ही सामायिक में छोटे-से-छोटे जीवों की भी दया और रक्षा करना चाहिए - ऐसी भावना उत्पन्न होती है और दृढ बनती है। 5 ससार के कार्य करते हुए अरिहन्तो की वाणी सुनने-वाचने का अवसर कठिन रहता है, सामायिक करने मे अरिहतों की वाणी सुनने-वाचने का अवसर मिलता है।

जिनको

अरिहंताणं=सभी अरिहन्त। भगवन्ताणं=भगवन्तों को।

अरिहंत भगवान स्वयं कैसे हैं ?

आइगराणं=धर्म की आदि करने वाले। तित्थयराणं=धर्म-
की रचना करने वाले। सयं=स्वयं ही। सबुद्धाणं=बोध
वाले।

अरिहंत भगवान् सबमें कैसे हैं ?

पुरिसुत्तमाणं=सब पुरुषों में श्रेष्ठ। पुरिस=सब पुरुषों में।
हाणं=सिंह के समान (पराक्रमी)। वर=श्रेष्ठ। पुंडरीयाणं=
डरीक कमल के (श्रेष्ठ जाति के कमल के समान (मनोहर)।
=श्रेष्ठ। गंधहत्थीणं=गंध हस्ती के (जिसके मद की गंध से दूसरे
थी भाग जाते है, उसके) समान (परवादियों को भगाने वाले)।

अरिहंत भगवान् विश्व के लिए कैसे हैं।

लोगुत्तमाणं=लोक में उत्तम। लोग=लोक के। नाहाणं=
थ (अनिष्ट का नाश करने वाले। हियाणं=हितकारी (इष्ट
प्राप्ति कराने वाले)। पइवाणं=दीपक (लोक को प्रकाश देने
ले) तथा। पज्जोयगराणं=प्रद्योत करने वाले (लोक को प्रकाशित
रने वाले।

अरिहंत भगवान् हमें क्या देने वाले हैं ?

अभय=अभय के। दयाणं=देने वाले वाले। चक्खु=(

की) आगे। मग्ग--(मोक्ष का) मार्ग। सरण=(मोक्ष की) शरण देने। जीव=(संयम रूप) जीवन तथा। बोहि=बोधि (सम्यक्त्व) दयाण=देने वाले।

अरिहंत भगवान् हमारे लिए क्या करते हैं ?

धम्म=धर्म के। दयाण=देने वाले। धम्म=धर्म के देसयाण=(उप) देशक। धर्म के नायगाण=नायक। धम्म=धर्म के। सारहीण=सारथी। धम्म=धर्म के। वर=श्रेष्ठ। चाउ=चार (गति) का अन्त करने वाले। चक्कवट्टीण=चक्रवर्ती दीवो=(संसार-समुद्र में डूबते हुओं को) द्वीप के समान। ताणं शरणभूत (रक्षक)। सरण=शरणभूत। गइ=गतिभूत। पइट्ठा= प्रतिष्ठा (आधार) भूत।

किस शक्ति से ऐसा उपकार करते हैं ?

अप्पडिहय=(क्योंकि वे) अप्रतिहत (पर्वतादि से कहीं भी रुकने वाले)। वरनाण=श्रेष्ठ ज्ञान (केवल ज्ञान तथा) दसण (केवल) दर्शन के। धराण=धारक हैं उन्होंने। विअट्टछउमा ज्ञानावरणीयादि चार कर्म नष्ट कर दिये हैं।

अद्वितीय उपकारी : अपने समान बनाने वाले

जिणाण=(स्वयं आत्म-शत्रुओं को) जीते हुए। जावया =(तथा दूसरों को भी) जिताने वाले। तिण्णाण-(स्वयं संसार समुद्र को) तिरे हुए। तारयाण=(तथा दूसरों को भी) तारने वाले बुद्धाण (स्वयं) बोध पाये हुए। बोहयाण=(तथा दूसरों को भी बोध प्राप्त कराने वाले। मुत्ताण=(स्वयं कर्मबन्धन से छूटे हुए

ाणं=(तथा दूसरों को भी) छुड़ाने वाले (ऐसे)। सव्वन्नूणं = ं। सव्वदरिसीणं = सर्वदर्शी।

अरिहंत भगवान् कैसे स्थान को पधारे ?

सिव=शिव (उपद्रवरहित)। अयल=अचल (स्थिर)। अरुग्र= (रोगरहित)। अणं त =अनंत (अन्तरहित) अक्खय = अक्षय रहित)। अव्वाबाह=अव्याबाध (बाधारहित)। अपुणराविति पुनरावृत्ति (पुनरागमन रहित)। सिद्धि गइ=सिद्धि गति। धेय=नाम वाले। ठाणं =स्थान को। सपत्ताणं =प्राप्त हुए। रे में)। सपाविउकामाणं=पाने की इच्छा वाले (योग्यता वाले)।

जियभयाणं=(ऐसे) भय को जीतने वाले। जिणाणं =जिनको। =नमस्कार हो।

नमोत्थुणं प्रश्नोत्तर

-नमोत्थुणं सामायिक सूत्र का कौनसा पाठ है ?
-सातवां पाठ है।
-छठा पाठ कौनसा है ?
-'करेमि भंते' अर्थात् सामायिक का प्रत्याख्यान लेने का पाठ।
-'करेमि भंते' कब बोला जाता है ?
-सामायिक लेते समय लोगस्स पाठ लेने के पश्चात् वंदना करके।
-नमोत्थुणं कब पढ़ा जाता है ?
सामायिक लेते समय 'करेमि भंते' से सामायिक लेने के बाद पारते समय लोगस्स के बाद।

प्र इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?
उ.—शक्रस्तव का पाठ।
प्र – इसे शक्रस्तव का पाठ क्यों कहते हैं ?
उ पहले देवलोक के इन्द्र, जिनका नाम शक्र है, वे इसी
त्थुण से अरिहन्तों व सिद्धों की स्तुति करते हैं। इ
'शक्रस्तव' कहा जाता है।
प्र. अरिहन्तों तथा सिद्धों की स्तुति (स्तव) कैसे करनी
उ. जैसे कि लोगस्स या नमोत्थुणं में की गई है, अर्थात
दीक्षित बनकर जो तप किये और गुण प्राप्त किये, वै
कर जो उपकार किय, मोक्ष पहुंचकर जो सुख प्राप्त किये
कार्यों की स्तुति करनी चाहिए। परन्तु उन्होंने संसार में
जो-कुछ सांसारिक कार्य किये, उसकी स्तुति नहीं
चाहिए।
प्र.—नमोत्थुणं के पढने से क्या लाभ है ?
उ.—लोगस्स के पढ़ने से जो लाभ है, प्रायः वे ही लाभ नमो
से भी होते हैं, क्योंकि दोनों में तीर्थंकरों का कीर्तन,
और पूजन किया गया है।
प्र – लोगस्स और नमोत्थुणं में क्या अन्तर है ?
उ —लोगस्स में प्रधान रूप से 1 नाम-स्मरण 2. नाम-स्
नमस्कार और 4. प्रार्थना है तथा नमोत्थुणं में 1 गुण
2. गुण-स्तुति और 3 नमस्कार है।
प्र —जबकि लोगस्स और नमोत्थुणं दोनों समान लाभ वाले
दोनों की क्या आवश्यकता है ?
उ —1 नाम-स्मरण, नाम-स्तुति, प्रार्थना, गुण-स्मरण, गुण
नमस्कार आदि सभी भक्ति के विविध रूप हैं। सभी

की गई भक्ति, सर्वाङ्गीण होती है, अतः लोगस्स, नमोत्थुणं दोनो आवश्यक हैं।

2. सभी की आत्माएं समान नहीं होती। किसी की नाम-स्मरण और नाम-स्तुति-रूप भक्ति मे विशेष तल्लीनता होती है, तो किसी की प्रार्थना मे विशेष तल्लीनता होती है, किसी की गुण स्मरण और गुण-स्तुति मे विशेष तल्लीनता होती है, तो किसी की नमस्कार मे विशेष तल्लीनता होती है। इनमे से कोई भी भक्त भक्ति के लाभ से वंचित न रहे-इसलिए भी लोगस्स तथा नमोत्थुणं दोनों आवश्यक हैं।

3 कोई नाम स्मरण या नाम स्तुति या प्रार्थना या गुण-स्मरण या गुण-स्तुति या नमस्कार इनमे से- किसी एक ही प्रकार की भक्ति को उचित और अन्य प्रकार की भक्ति को अनुचित न बतावे, इसलिए भी लोगस्स और नमोत्थुणं दोनों आवश्यक हैं।

सभी प्रकार की भक्ति मे कौनसी भक्ति सर्वश्रेष्ठ है।

—गुण-स्मरण-रूप भक्ति।

—क्या इस भक्ति से सभी भक्तियों का काम चल सकता है।

—सामान्यतया नही। कोई भक्ति अधिक लाभ कर सकती है, पर दूसरी भक्ति का काम नहीं कर सकती। इसलिए सभी भक्तियां करनी चाहिए।

※

एयस्स नवमस्स : सामायिक पारने का पाठ

1. एयस्स नवमस्स सामाइय-वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा,

न समायरियव्वा । त जहा मण दुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, दुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइ-अकरणया, सामाइयस्स अणव करणया । तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

2. सामाइय सम्म काएण न फासियं न पालियं न किट्टियं न सोहियं न आराहियं । आणाए अणुपालियं न तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।'

हिन्दी पाठ

3 दस मन के, दस वचन के और बारह काया के इन यिक के बत्तीस दोष में से किसी दोष का सेवन किया हो, तो 'त मिच्छा मि दुक्कड ।'

4. स्त्री-कथा, भात-कथा, देश-कथा और राज-कथा चारों में से कोई विकथा की हो, तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड।'

5 आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा और परिग्रह सज्ञा- से कोई सज्ञा की हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

शब्दार्थः—

एयस्स=इस । नवमस्स=नववे । ... वयस्स=व्रत के । पच=पाच । अइयारा=अतिचार । जा... जानने योग्य है । समायरियव्वा=आचरण करने यो... न=नहीं है । तजहा=वे इस प्रकार हैं :

मण=मन का । दुप्पणिहाणे=दुष्प्रणिधान । वय=वचन दुप्पणिहाणे=दुष्प्रणिधान । काय=काया का । दुप्पणिहाणे—दु... धान । सामाइयस्स=सामायिक की । सइ=स्मृति । ... न करना (न रखना) सामाइयस्स=सामायिक को । अणवट्ठि...

तिवस्थित । करणया=करना ।

यदि ये प्रतिचार लगे हों, तो

मि=मेरा । दुक्कड=दुष्कृत (पाप) । मिच्छा=मिथ्या (निष्फल) हो ।

सम्मं=सम्यक रूप मे । काएणं=काया से । सामाइय=सामायिक का । 1. फासियं=(प्रारम्भ मे प्रत्याख्यान का पाठ न पढ़ने से) स्पर्श । न=न किया हो । 2 पालियं=(मध्य मे सावद्ययोग न छोड़ने से) पालन । न=न किया हो । 3 तीरियं=(सामायिक को अन्त में पांच मिनट अधिक न बढ़ाने से) तीर पर । न=न पहुंचाई हो । 4. किट्टियं=(सामायिक समाप्त होने पर सामायिक के गुणों आदि का) कीर्तन । न=न किया हो । 5 सोहियं=सामायिक मे लगे अतिचारो की आलोचना प्रतिक्रमण करके सामायिक को) शुद्ध । न=न बनाई हो । आराहियं=(इस प्रकार सामायिक की) आराधना । न=न की हो । आणाए=अरिहत भगवान् की आज्ञानुसार (सामायिक की) । अणुपालियं=अनुपालना । न=न । भवइ=हुई हो ।

तो

तस्स=उसका । मि=मेरा । दुक्कड=दुष्कृत (पाप) । मिच्छा=मिथ्या (निष्फल) हो । विकथा=सामायिक (संयम) की विराधना करने वाली कथा । 1. स्त्रीकथा=स्त्री की, (क) जाति की, (ख) कुल की, (ग) रूप की, (घ) वेश की आदि की निन्दा या प्रशंसा की कथा करना । 2. भत्तकथा=(क) भोजन में इतना घी आदि

लगा, (ख) इतने पकवान बने, (ग) इतनी वनस्पति लगी, (घ) इतने रुपये व्यय हुए आदि या निन्दा प्रशंसा रूप कथा करना। 3 देशकथा=(क) अमुक देश मे उग लड़के से लग्न किया जाता है, (ख) वैसा भोजन जिमाया जाता है, (ग) वैसे मकान बनाये जाते है, (घ) स्त्री-पुरुष वैसे वेश पहनते है—इत्यादि निन्दा या प्रशंसा-रूप कथा करना। 4 राजकथा=(क) अमुक राजा घूमने आदि के लिए राजधानी से ऐसे ठाटबाट से निकला, (ख) उसने विजय आदि करके इस प्रकार राजधानी मे प्रवेश किया, (ग) अमुक राजा के पास या राज्य मे इतनी सेना, शस्त्र आदि है (घ) इतने धन-धान्य आदि के कोष, कोष्ठागार हैं— आदि निन्दा या प्रशंसा-रूप कथा करना।

संज्ञा=अभिलाषा। 1 आहारसंज्ञा=सामायिक में भोजन आदि की अभिलाषा। 2 भय-संज्ञा=भयंकर देव, हिंस्र पशु आदि से डरना। 3. मैथुन-संज्ञा=स्त्री आदि के कामभोग की अभिलाषा। 4 परिग्रह-संज्ञा=धर्मोपकरण के अतिरिक्त सम्पत्ति की अभिलाषा तथा धर्मोपकरण पर मूर्च्छा।

'एयस्स नवमस्स' प्रश्नोत्तर

प्र.—अतिचार किसे कहते है ?

उ—व्रत के तीसरे दोष को। व्रत भंग करने का विचार होना 1. 'अतिक्रम, है। साधनों को जुटा लेना 2. व्यतिक्रम' है। व्रत को कुछ भंग करना 3. 'अतिचार' है तथा व्रत को सर्वथा भंग कर देना 4 'अनाचार' है। ये व्रत के सब चार दोष हैं।

प्र.—'दुष्प्रणिधान' किसे कहते हैं ?

मन, वचन या काया के योग को अशुभ प्रवृत्ति में लगाना तथा अशुभ प्रवृत्ति में एकाग्र बनाना 'दुष्प्रणिधान' है।

—सुप्रणिधान किसे कहते हैं?

मन, वचन या काया के योग को शुभ प्रवृत्ति में लगाना तथा शुभ प्रवृत्ति में एकाग्र बनाना 'सुप्रणिधान' है।

—सामायिक की स्मृति न रखने का क्या भाव है?

—1. सामायिक का प्रत्याख्यान लेना ही भूल जाना। 2 'अभी मैं सामायिक में हूं' - यह भूल जाना 3 'मैंने सामायिक कब ली', 4. 'कितनी ली' — यह भूल जाना। 5 वर्ष में या महीने में इतनी सामायिक करूंगा' - इस प्रकार लिए हुए प्रत्याख्यान को भूल जाना। इत्यादि।

—सामायिक को अनवस्थित करने का क्या भाव है?

—1 सामायिक विधि से न लेना। 2 विधि से न पारना। 3. सामायिक का काल पूरा होने से पहले पारना। 4 सामायिक में ऊबना 5. सामायिक कब पूरी होगी - इस प्रकार विचार करना, बार बार घड़ी की ओर देखते रहना 6 वर्ष में या महीने में जितनी सामायिकें करने का प्रत्याख्यान किया हो, उतनी सामायिकें न करना। 7. सामायिक जिस समय, प्रात, मध्या, पक्षी (पक्खी) आदि को करने का नियम लिया हो, उस समय न करना। इत्यादि।

—अनाचार के समान अतिक्रमादि तीन का 'मिच्छा मि दुक्कड' क्यों नहीं?

—अतिक्रम और व्यतिक्रम से अतिचार बड़ा है, अतः अतिचार के मिच्छा मि दुक्कड' समझ लेना चाहिये। अनाचार से सामायिक पूरी भग हो जाती है, इसलिए अनाचार के लिए तो फिर से सामायिक करनी है।

ी गाथा :

1 अविवेक 2 यश कीर्ति 3 लाभार्थी,
4 गर्व 5 भय 6 निदानार्थी।
7 संशय 8 रोष 9 अविनय,
10 अबहुमान ये मनोदोष ॥1॥

1 अविवेक=सावद्य-निरवद्य आदि का विवेक न रखे। 2
कीर्ति=नाम, आदर सत्कार आदि की इच्छा से सामायिक
। 3 लाभार्थ=धन, पुत्र, स्त्री आदि के लाभ के लिए करे।
र्व=सामायिक की शुद्धता, सम्पत्ति तथा अपने कुल आदि का
करे। 5 भय=श्री संघ की निन्दा, समाज का अपवाद, राज
ण्ड, लेनदार की उपस्थिति आदि के भय से करे। 6 निदान
रा के अतिरिक्त अन्य फल की इच्छा से करे। 7 संशय – 'अब
कुछ फल नहीं हुआ, अब क्या होगा ?' आदि सामायिक के फल
य करे। 8 रोष=रूठ-झगड़ कर सामायिक करे या सामा-
में रागद्वेष करे। 9 अविनय=सामायिक तथा देव गुरु धर्म का
य न करे। 10 अबहुमान=प्रति प्रेरणा से या परवश होकर
हृदय में बहुमान न हो या न रखे।

वचन के १० दस दोष

था :

1 कुवयण 2 सहसाकारे
3 सछंद 3 संखेव 5 कलहं च।
6 विगहा वि 7 हासो 8 ऽसुद्ध,
9 निरवेक्खो, 10 मुणमुणा, दोसा दस ॥2॥

न्दी छाया:

1 कुआसन 2 लासन 3 चलदृष्टि,
4 सावद्यक्रिया 5ऽऽलंबन 6 आकुंचन प्रसारण।
7 आलस्य 8 मोटन 9 मल 10 विमासन,
11 निद्रा 12 वैयावृत्य, ये बारह काय दोष ॥3॥

1. कुआसन=अविनय-अभिमानयुक्त आसन में बैठे। जैसे-
...र पसारे, पाव पर पाव चढ़ाकर बैठे। 2. चलासन=बिना कारण
...ग का आसन, वस्त्र का आसन या भूमि का आसन बदले। 3
...लदृष्टि=दृष्टि स्थिर न रखे, बिना कारण इधर-उधर देखता
...हे। 4 सावद्यक्रिया=पाप-क्रिया करे, सासारिक क्रिया करे, आभू-
...ण, घर, व्यापारादि की रखवाली करे या संकेत आदि करे। 5
...लंबन=रोगादि कारण बिना भीत, खभे आदि का टेका ले। 6.
...कुंचन प्रसारण=अकारण हाथ पैर सिकोड़े-पसारे। 7 आलस्य
...=आलस्य से अग मोड़े। 8 मोटन=हाथ-पैर की अगुलियां मोड़े-
...टिकावे। 9 मल-शरीर का मैल उतारे। 10 विमासन=शोकासन
...बैठे, बिना पूजे खाज खुजाले, रात्रि में बिना पूजे मर्यादा या
...वश्यकता से अधिक चले। 11 वैयावृत्य=बिना कारण दूसरों से
...वा करावे (या करले) स्वाध्यायादि करते डोलता रहे।

※

'सामायिक' विधि एवं प्रश्नोत्तर

प्र.—सामायिक कहा करनी चाहिए ?
उ. सामायिक निरवद्य स्थान मे करे। जहा तक हो, जहा सन्त

विराजते हों वहा या उनके अभाव मे 2. जहां श्रावक
सिकादि धर्म-क्रिया कर रहे हों या 3. करते हों, उस स
सामायिक करना प . नो पर की रखवाली आदि के
उत्पन्न न हो, ऐसे एकान्त स्थान मे सामायिक करते ह
योग रखन ।

प्र – सामायिक किस समय करनी चाहिये ?

उ.- यदि सामायिक एक से अधिक-कम बनती हो, तो 1
उठते ही कर या 2 भोजन से पहले तक सामायिक
का प्रयत्न रखन । यदि उस समय तक न बन सके,
सूर्यास्त से पहले ही चउविहाहार (1. अशन, 2.
खाद्य 4 स्वाद्य) या तिविहाहार (पानी छोड़ कर) का
ख्यान करके सायकाल प्रतिक्रमणादि के समय सामायिक
अथवा यदि यह भी अनुकूलता न हो, तो 4. जब भी
मिले, तभी सामायिक करें । परन्तु जहा तक हो, किसी
को सामायिक क्रिया-रहित न जाने देने का प्रयत्न करें ।

प्र. सामायिक का वेश कैसे पहने तथा उपकरण कैसे रक्खे ?

उ – निरवद्य स्थान को देख-पूंजकर वहां अपना आसन
सामायिक वेश—कुरता, टोपी, पगड़ी, पेण्ट, पायजामा
उतारें । एक लांगवाली धोती लगावें । (गर्मीजी के
आगार) । दुपट्टा लगाना हो, तो स्त्रियों के सामने निर
मे तथा अन्य समय में भी प्रायः किसी कंधे या बाहु को
न रखते हुए दुपट्टा लगावें । मुख-वस्त्रिका का प्रतिलेखन
उसमें डोरा डालकर मुह पर बाधें । माला, पुस्तक आदि
अपने आसन पर रखें । पूजनी को पुस्तक से कुछ दूर
पुस्तक पर न रखें ।

प्र सामायिक लेने की विधि क्या है ?

उ.—सन्तों के उपाश्रय मे सामायिक करने का अवसर आवे,

विनय के लिए पहले सन्तों को वन्दन कर, फिर वस्त्र-परिवर्तन करे। फिर पुनः 1 तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार पचांग वन्दना करे। 'तिक्खुत्तो में करेमि' तक बोलते हुए तीन बार प्रदक्षिणावर्त करे। फिर दोनों घुटने भूमि पर टिका कर दोनों हाथों को सीप के समान जोड़कर मस्तक पर लगाकर 'वंदामि से पज्जुवासामि' तक का पाठ बोले। फिर पचांग झुकाते हुए 'मत्थएण वंदामि' कहे। तीन बार वन्दना करके चउवीसत्थव (आलोचना आदि) की आज्ञा ले। यदि गुरुदेव न हों, तो पूर्व या उत्तर दिशा में मुँह करके भगवान् महावीर-स्वामी को या आचार्य श्री जी को वंदन करें। फिर यदि बड़े श्रावक उपस्थित हों, तो उनसे 'चउवीसत्थव' की आज्ञा लेकर 2. नमस्कार मन्त्र पढ़ें। फिर 3 इच्छाकारेण का पाठ बोलकर ईर्यापथिक की आलोचना करे। फिर 4 तस्सउत्तरी बोलकर प्रायश्चित्त आदि के लिए कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करे। 'वोसिरामि' तक बोलने के पश्चात् कायोत्सर्ग करके कायोत्सर्ग में इच्छाकारेण के पाठ का 'इरिया वहियाए विराहणाए से ववरोविया' तक का मन मे चिन्तन करें। इस प्रकार कायोत्सर्ग पूर्वक दूसरी बार की आलोचना-रूप प्रायश्चित्त से पूर्ण शुद्धि करके पूर्व की प्रतिज्ञानुसार 'णमो अरिहन्ताणं' कह कर कायोत्सर्ग पारे। फिर 'णमो अरिहन्ताणं से साहूणं' तक एक प्रकट नमस्कार मन्त्र पढ़ें। फिर ध्यान पारने का पाठ पढ़ें। फिर कीर्तन के लिए चतुर्विंशतिस्तव-रूप 5 लोगस्स का पाठ पढ़ें। फिर वन्दन करके गुरुदेव से या बड़े श्रावक से सामायिक का प्रत्याख्यान करें या उनकी आज्ञा होने पर अथवा उनके अभाव में भगवान् की साक्षी से स्वयं 6. 'करेमि भंते' के पाठ में 'जाव नियम' शब्द में आगे जितनी सामायिकें लेनी हों, उतने मुहूर्त उपरान्त या

पारते समय यह पाठ न बोलें । शेष सब पहले के समान
7. दो नमोत्थुणं दें । फिर सामायिक पारने का पाठ
8 'एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स' पूरा कहें । फिर एक
नमस्कार मन्त्र कहें । यों यह सामायिक पारने की विधि
पूरी हुई ।

सामायिक की विधि खड़े रहकर करना चाहिए या बैठकर ?

—जहाँ तक शरीर में खड़े होने की शक्ति हो वहाँ तक सामायिक खड़े रहकर विधि करना श्रेष्ठ है । शक्ति होते हुए भी बिना कारण बैठे-बैठे सामायिक की विधि करने से 'अविनय-अबहुमान' नामक दोष लगता है । कारण होने पर भी जहाँ तक सम्भव हो, पर्यंक (पालथी-पालखी) आदि अच्छे आसन लगाकर बैठें । कुआसन से नहीं बैठें ।

खड़े रहने की विधि क्या है ?

—शक्ति और कारणरहित अवस्था में खड़े रहते समय पैरों के अगले भाग में चार अंगुल का तथा पिछले भाग में कुछ कम चार अंगुल का अन्तर डालकर खड़े रहना चाहिए । इस समय मस्तक को कुछ झुकाकर रखना चाहिए तथा दृष्टि चल न रखते हुए स्थिर रखनी चाहिए ।

- खड़े रखने की ऐसी मुद्रा को क्या कहते हैं और क्यों कहते हैं ?

—ऐसी मुद्रा को 'जिनमुद्रा' कहते हैं । 1 जिनेश्वर (अरिहन्त) भगवान् कायोत्सर्ग आदि इसी मुद्रा में करते हैं, इसलिए इसे 'जिनमुद्रा' कहते हैं । 2 इस मुद्रा से आलस्य पर विजय मिलती है । 3 तन-मन में दृढ़ता

[illegible] ([illegible]) को सही [illegible]
[illegible] । इसीलिए इसे 'जिनमुद्रा' कहते हैं।

प्र हाथ जोड़ने की विधि क्या है ?

उ दोनों हाथों की अंगुलियां आपस में मिलाकर कमल के आकार में हाथ जोड़ने चाहिए और दोनों कोहनियां को नाभि के निकट टिकाना चाहिए।

प्र – हाथ जोड़ने की इस मुद्रा को क्या कहते है और क्यों कहते है ?

उ – इस मुद्रा को 'योगमुद्रा' कहते है। इससे देव, गुरु, शास्त्र, आत्मा जिसका भी ध्यान करना हो, तन-मन अधिक [illegible] जुड़ जाते है। इसलिए 'योगमुद्रा' कहते है।

प्र - क्या सामायिक लेने की और पारने की सारी जिनमुद्रा में खड़े रहकर और योगमुद्रा से हाथ जोड़ करनी चाहिए अथवा पर्यंक आदि आसन से बैठकर योगमुद्रा में हाथ जोड़कर करनी चाहिए।

उ.—नहीं। कायोत्सर्ग और नमोत्थुण की विधि छोड़कर शेष की विधि करनी चाहिए।

प्र कायोत्सर्ग की विधि क्या है ?

उ. कायोत्सर्ग जिनमुद्रा में खड़े होकर या पर्यंकादि आ[illegible] में बैठकर करना चाहिए, परन्तु योगमुद्रा की तरह हाथ न[illegible] जोड़ने चाहिए। यदि कायोत्सर्ग जिनमुद्रा से (ख[illegible] रह कर) करना हो, तो दोनों हाथों को घुटनों की ओ[illegible] लम्बे करके रखने चाहिए और खुले रखने चाहिए

सामायिक शुद्ध और उत्तम कैसे हो ?

सामायिक के समय चारों आलम्बनों से धर्म-ध्यान करते रहने पर प्रायः मन पाप में नहीं जाता। यदि कभी चला जाय, तो पुनः शीघ्र उससे लौट आता है। मन पाप में चले जाने पर तत्काल उसे धर्म में जोड़ने के साथ ही 'मिच्छा मि दुक्कड़' देना (कहना) चाहिए। इस प्रकार करते रहने पर सामायिक नित्य अधिक शुद्ध और होती जायगी।

बहुत ध्यान रखने पर और बहुत प्रयत्न करने पर भी सामायिक में मन थोड़ा-बहुत पाप में चला ही जाता है, जिससे सामायिक में अतिचार लग जाता है। अतः जब तक निरतिचार सामायिक करने की योग्यता न आवे, तब तक सामायिक कैसे की जाय ?

1. किसी भी काम को पूरा शुद्ध करने की योग्यता पहले नहीं आती। फिर धर्म के काम में तो पहले योग्यता आना बहुत कठिन है। योग्यता काम करते-करते धीरे-धीरे ही आती है। जो पहले योग्यता आने की प्रतीक्षा में काम नहीं करता, वह योग्यता नहीं पा सकता, वरन् उसके लिए योग्यता पाने का मार्ग ही दूर हो जाता है। इसलिए सामायिक सातिचार हो, तो भी सामायिक करते रहना चाहिए, 2. दूसरी बात यह भी है कि ध्यान और प्रयत्न रखते हुए भी सामायिक में अतिचार लगकर सामायिक में हानि हो जाय, तो भी योग में लाभ ही अधिक रहेगा। इसलिए भी सामायिक सातिचार होते हुए भी अवश्य करते रहना चाहिए।

प्र — हम अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करें, दिन रात के 29 भा
बड़े-बड़े पाप करते रहें और केवल एक सामायिक
करें, तो उसमें क्या लाभ है?

उ — कोई विशेष लाभ नहीं। क्योंकि शेष 29 भाग तो
मे जाते ही है। साथ ही साथ उन पापों के
सामायिक के समय मे भी विचारो की अधिक
और अच्छे विचारों की अधिक स्थिरता नहीं रह पा
इसलिए आप अणुव्रत-गुणव्रत धारण कीजिए और
प्रकार दिन-रात्रि को अधिक सफल बनाइए।

प्र — अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करने के क्या कारण है?

उ — अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करने के दो कारण
1. स्वयं मे रही हुई पाप की अधिक रुचि और 2. कु
समाज, राज्य आदि दूसरो मे रही हुई अनीति व कुरी
शुभ भावना और पुरुषार्थ मे दृढ़ता लाने पर प
कारण शीघ्र और बहुत अंशो मे दूर हो सकता है
दूसरा कारण भी कुछ समय मे कुछ अंश तक दूर
सकता है। अतः आप भावना और पुरुषार्थ कीजि
अणुव्रत गुणव्रत धारण करना बहुत कठिन नहीं है।

प्र. — यदि धारण न कर सकें तो?

उ — तो भी सामायिक करने मे आत्मा को कुछ लाभ ही
1. जैसे सारे दिन अड़ियल रहने वाला या उत्प
चलने वाला घोड़ा यदि 48 मिनिट मे 5 मिनिट
सुपथ पर चले, तो इसमें कुछ लाभ ही है, हानि न
2. या जैसे सारे दिन धूल मे खेलने वाला बालक

48 मिनिट मे 5 मिनिट भी शान्त होकर बठे, तो उसे लाभ हा है, हानि नहीं।

3—या जैसे सारे दिन कष्ट पाने वाले दुखी को यदि 48 मिनिट में 5 मिनिट भी आराम-शान्ति मिले, तो उसे लाभ ही है, हानि नहीं।

इसी प्रकार यदि अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करने वाला 48 मिनिट की एक सामायिक करके उसमे पाच मिनिट भी मन स्थिर रख सके, तो उसमे कुछ लाभ ही है, हानि नहीं।

4. जैसे 30 हाथ की रस्सी में से 29 हाथ रस्सी कुए में पड़ गई हो और 1 हाथ रस्सी मे से भी केवल चार अगुल रस्सी ही हाथ मे रही हो तो उस चार अगुल रस्सी मे से वह पूरी रस्सी एक समय अपने हाथ मे आ सकेगी।

5. या जैसे 30 चोरों में से एक चोर थोडा भी अपना बन गया, तो गया हुआ धन उसके द्वारा एक दिन पूरा-पूरा भी अपने हाथ मे आ सकेगा। इसी प्रकार यदि जीवन मे एक भी सामायिक चलती रही, तो वह भविष्य में आत्मा को बचा लेने मे काम ही आवेगी।

6. जिस प्रकार किसी रस्सी को बीच-बीच मे से कई स्थानो पर काट दी हो और फिर भले ही गाठे देकर उसे जोड दी हो तो भी उसमे पहले वाला बल नहीं रहता, न उसका पहले वाला मूल्य ही रहता है। वैसे ही जीवन की पापी रस्सी को बीच मे सामायिक कर-कर के कई स्थानो से काट दी हो और फिर भले ही उसे जोड दी हो, तो भी उसमें पाप का बल अधिक नहीं रहता, न पाप का पहले वाला मूल्य (भाव) ही

रहता है। इसलिए पाप का रस और गन्ध (भाव) ... लिए भी सामायिक उपयोगी है। यदि एक मनुष्य दिन-रात ही पाप करे, वह सामायिक या अन्य कोई भी धर्म-क्रिया न करे, तो उसके पाप में जो तीव्र भावना रहेगी, वैसी भावना कोई मनुष्य दिन-रात में केवल दो सामायिक करता क्यों न हो, उसमें नहीं रहेगी। क्योंकि जैसे अणुव्रत के न होने से उसका प्रभाव सामायिक पर पड़ता है, सामायिक की शुद्धता में मन्दता आती है, उसी प्रकार सामायिक का प्रभाव 29 मुहूर्त में होने वाली पाप की भावना और पाप के पुरुषार्थ पर कुछ-न-कुछ अवश्य पड़ता है, उसमें मन्दता आती है। इसलिए अणुव्रत-गुणव्रत धारण न सकने पर भी सामायिक अवश्य करनी चाहिए।

प्र.— कुछ व्यक्ति लोग सामायिक करके विकथा निन्दा करते जाते हैं। क्या यह ठीक है?

उ.— आप श्रावक हो, अभी अपना जीवन बनाओ! दूसरों की आलोचना करना बड़ों का—गुरुओं का काम है। इस पर विचार वे करेंगे। हां आप यह अवश्य विचार रखो कि 1. हम भविष्य में भी सामायिक शुद्ध करते रहेंगे। 2. दूसरों को भी शुद्ध सामायिक कराने वाले बनेंगे और 3 शुद्ध सामायिक करने वालों का अनुमोदन करके उत्साह बढ़ाने वाले होंगे।

सामान्य ज्ञान

१. जैन धर्म—

नमस्कार मन्त्र तथा जीव-अजीव आदि पर श्रद्धा रखने वाले

क्या कहलाता है ?

—जैन।

—जैन किसे कहते हैं ?

—जो जिन भगवान् द्वारा बताये हुए धर्म पर श्रद्धा रखता हो, पालन करता हो।

—'जिन' किसे कहते हैं ?

—भगवान, जिन्होंने [illegible] —वे हमारी आत्मा के शत्रु हैं। [illegible] जीते हैं वे अरिहन्त कहलाते हैं। आत्मा के शत्रुओं पर विजय पाने के कारण अरिहन्त को जिन कहा जाता है।

धर्म किसे कहते हैं ?

जो जीवों को दुर्गति में पड़ते हुए बचावे तथा सुगति में ले जावे, उसे धर्म कहते हैं।

—धर्म क्या है ?

—1. सम्यग् ज्ञान, 2. सम्यग् दर्शन 3 सम्यग् चारित्र तथा 4. सम्यग् तप।

ज्ञान किसे कहते हैं ?

—भगवान द्वारा बताये हुए जीव-अजीव आदि नव तत्वों का ज्ञान करना।

—दर्शन किसे कहते हैं ?

—अरिहन्त द्वारा बताये हुए तत्वों पर श्रद्धा रखना।

—चारित्र किसे कहते हैं ?

—महाव्रत या अणुव्रतादि का पालन करना।

तक मिलते हैं। सत्य से विश्वास बढ़ता है, प्रामाणिकता
होती है। अचौर्य और ब्रह्मचर्य से सब स्थानों मे प्रवेश
मिलता है। कोई सन्देह नहीं करता। ब्रह्मचर्य से शरीर
स्वस्थ और बलवान रहता है। अपरिग्रह से तन-मन को
अधिक विश्राम मिलता है। 4 बाहरी तप से रोग नष्ट
होते हैं। शरीर नीरोग रहता है। भीतरी तप से लोग
हमारा आदर करते है। हमे निमन्त्रण देते है—इत्यादि
जैन धर्म मे इस लोक में कई लाभ हैं।

-जैन धर्म मे परलोक में क्या लाभ हैं?

1. ज्ञान से समझने की शक्ति, स्मरणशक्ति, तर्कशक्ति, तेज
मिलती है। 2. श्रद्धा से देव गति, मनुष्य गति मिलती है।
आर्यक्षेत्र मिलता है। अच्छा कुल मिलता है। 3 अहिंसा
से दीर्घ आयुष्य मिलता है, नीरोग काया मिलती है।
सत्य से मधुर कठ और प्रिय वाणी मिलती है। अचौर्य
मे चोर का वश नही चलता। ब्रह्मचर्य मे पाचो इन्द्रिया
मिलती हैं। इन्द्रिया सतेज रहती हैं। अपरिग्रह मे धनवान
कुल मे जन्म होता है। कही पर भी सम्पत्ति का विनाश
नही होता। 4 तप से किसी प्रकार दुख या शोक नही
होता। एक दिन मोक्ष मिलता है।

-जैन धर्म से तात्कालिक लाभ क्या है?

-1. ज्ञान से जीव-अजीवादि तत्वो का ज्ञान होता है। 2 दर्शन
से (अरिहत की वाणी पर) जीव-अजीवादि तत्वो पर
श्रद्धा होती है। 3 चरित्र से कर्म बधते हुए रुकते
हैं। तप से पुराने कर्म क्षय होते हैं।

२. तीर्थंकर और तीर्थ

प्र.—तीर्थंकर किसे कहते हैं।

उ.—जो तिराता है, उसे तीर्थ कहते हैं. अरिहंतों के प्रव (धर्म, उपदेश) इस संसार से तिराते हैं. अत अरि के प्रवचन को तीर्थ कहते हैं। अरिहंत प्रवचन तीर्थ को प्रकट करते हैं, इसलिए अरिहंतों को तीर्थं कहा जाता है।

प्र. तीर्थंकर कितने हुए ?

उ.—भूतकाल में अनन्त तीर्थंकर हो चुके हैं, किन्तु इस अ सर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर हुए। उनके नाम इस प्र हैं

1. श्री ऋषभनाथजी
2. श्री अजितनाथजी
3. श्री सम्भवनाथजी
4. श्री अभिनन्दनजी
5. श्री सुमतिनाथजी
6. श्री पद्मप्रभजी
7. श्री सुपार्श्वनाथजी
8. श्री चन्द्रप्रभजी
9. श्री सुविधिनाथजी
10. श्री शीतलनाथजी
11. श्री श्रेयांसनाथजी
12. श्री वासुपूज्यजी
13. विमलनाथजी
14. श्री अनन्तनाथजी
15. श्री धर्मनाथजी
16. श्री शान्तिनाथजी
17. श्री कुन्थुनाथजी
18. श्री अरनाथजी
19. श्री मल्लिनाथजी
20. श्री मुनि सुव्रतजी
21. श्री नेमीनाथजी
22. श्री अरिष्टनेमिजी
23. श्री पार्श्वनाथजी
24. श्री महावीरस्वामीजी

[illegible]

[illegible]

1. श्री इन्द्रभूतिजी
2. श्री अग्निभूतिजी
3. श्री वायुभूतिजी
4. श्री व्यक्तपुत्रजी
5. श्री सुधर्मा स्वामीजी
6. श्री मण्डितजी
7. श्री मौर्यपुत्रजी
8. श्री अकम्पितजी
9. श्री अचलभ्राताजी
10. श्री मेतार्यजी
11. श्री प्रभासजी

प्र.– गणधर किसे कहते हैं ?

उ.– 1. जो भगवान से (1) उप्पन्ने (2) विगमे और (3) ध्रुवे इन तीन शब्दों से सारा ज्ञान पाते हैं, 2. भगवान के वचनों को सूत्र रूप शास्त्र बनाते हैं तथा 3. साधुओं के गण को धारण करते हैं, उन्हें गणधर कहते हैं।

प्र. श्री इन्द्रभूतिजी के विषय में और क्या जानें ?

उ.– श्री इन्द्रभूतिजी, श्री महावीर स्वामीजी के सबसे पहले शिष्य हुए। ये सभी साधुओं में बड़े थे। उन्हें गौतम गोत्र के होने से श्री गौतम स्वामीजी भी कहा जाता है।

प्र. आज हम कितने शास्त्र मानते हैं और आज किन गणधर के बनाये हुए शास्त्र मिलते हैं ?

उ.– हम बत्तीस शास्त्र मानते हैं और आज श्री सुधर्मा स्वामी के बनाये हुए शास्त्र मिलते हैं।

प्र.- साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—इन चार को तीर्थ में

जाता है और यहा भगवान् की वाणी को तीर्थ बनाया —
ऐसा क्यो ?
तिराती तो भगवान् की वाणी ही है, इसलिए तीर्थ वही है।
परन्तु वह भगवान् की वाणी साधु, साध्वी, श्रावक,
श्राविका के कारण टिकती है। वे स्वय सीखते हैं और
दूसरो को सिखाते है, इसलिए इन चारो को भी तीर्थ
कहते हैं।

६३ श्लाध्य पुरुषों के नाम

जैन ग्रन्थों मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और
तिवासुदेव को श्लाध्य पुरुष कहा गया है। उनके नाम इस
कार हैं—

२४ तीर्थंकर

इस अवसर्पिणी काल मे चौबीस तीर्थंकर हो चुके हैं। तीर्थ
का अर्थ सघ है। साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका को सघ
कहते हैं। जो तीर्थंकर होते हैं, वे इस चतुर्विध सघ की स्थापना
करते हैं। वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हैं। उनके चरणों मे स्वर्ग के
इन्द्र भी नमस्कार करते है।

चौबीस तीर्थंकरो के नाम तीर्थंकर और तीर्थ पाठ मे
आ चुके हैं।

१२ चक्रवर्ती

चक्रवर्ती वे कहलाते हैं जो सम्पूर्ण छह खण्ड पृथ्वी को

8. रामचन्द्रजी
9. बलभद्रजी

8. लक्ष्मणजी
9 कृष्णजी

प्रतिवासुदेव के नाम

1. अश्वग्रीवजी
2. तारकजी
3. मेरकजी
4 मधुकीटजी
5. निष्कुम्भजी
6 बलिजी
7. प्रह्लादजी
8. रावणजी
9. जरासन्धजी

दस श्रावक के नाम

1 आनन्दजी
2 कामदेवजी
3 चुलनीपीयाजी
4 सुरादेवजी
5. चुल्लशतकजी
6 कुण्डकोलिकजी
7 सकडालजी
8 महाशतकजी
9 नन्दिनीपिताजी
10 शालिहीपियाजी

प्रश्न

1. तीर्थंकर किसे कहते हैं उनके नाम बताओ ?
2 चक्रवर्ती किसे कहते है। कौनसे तीर्थंकर चक्रवर्ती भी हैं।
3 बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव के नाम बताओ ?

श्रावकजी के तीन मनोरथ

परिग्रह अल्प करने की भावना—पहले मनोरथ मे श्रावकजी ऐसा चिन्तन करते हैं कि, हे जिनेश्वर देव ! कब मैं आरम्भ और

परिग्रह को थोड़ा बहुत घटाऊँगा। वह दिन मेरे लिए धन्य
परम कल्याणकारी होगा।

2 सर्व विरती की भावना—दूसरे मनोरथ में श्रा
ऐसा चिन्तन करते हैं कि, हे जिनेश्वर देव! कब मैं गृहस्थ
त्याग करके दीक्षा लूँगा, वह दिन मेरे लिए धन्य और
कल्याणकारी होगा।

3. पण्डित मरण की भावना तीसरे मनोरथ में श्राव
ऐसा चिन्तन करते हैं कि, हे जिनेश्वर देव! कब मैं श्राव
आहार का त्याग करके, अट्ठारह पाप स्थानों का त्याग क
और भूतकाल की भूलों की आलोचना, निन्दा, गृहि प्रतिक्र
करके निःशल्य होकर सभी जीवों को क्षमा कर, चार शरण
हुआ पण्डित मरण से मरूँगा, वह दिन मेरे लिए धन्य होगा
कल्याणकारी होगा।

श्रावकजी के पांच अभिगम

अभिगम अर्थात् भगवान् के समवसरण में या साधु-सा
के उपाश्रय (स्थानक) में उनके सामने जाते समय पालने
नियम। ये अभिगम पांच हैं। जैसे—

1. सचित्त का त्याग- देव-गुरु के समीप जाते समय
फल, फूल, बीज, दतौन, शाक आदि सचित्त वनस्पति, कच्चा पा
नमक लालटेन, लाईटर आदि साथ नहीं ले जाना।

2. अचित्त का विवेक - दर्प-सूचक वस्तुएं जैसे छत्र, चा
जूते, मोजे, वाहन आदि एक तरफ रखकर, देव-गुरु को व
करना। भाइयों को सामायिक के लिए महासतीजी और व

ामने वस्त्र नही बदलना चाहिए, किन्तु एक तरफ जाकर बदलना चाहिए ।

3 उत्तरासन या मुहपत्ती अथवा रूमाल मुह के ऊपर ा । देवगुरु के समक्ष खुले मुह से बोला नही जाता है । इसलिए ा के लिए कोई उपर्युक्त एक वस्तु भी मुख पर रखना ।

4. प्रजलीकरण जहां से देव-गुरु दिखाई दे वहीं से ी (जोड़े हुए दोनों हाथ) ललाट से लगाकर विनय करना ।

5. मन की एकाग्रता गृह कार्य के प्रपंच या पाप कार्यों न हटाकर देव-गुरु क्या फरमाते हैं ? उस तरफ एकाग्रता रख- ुनना और कैसे गुणवान हैं ? इसमे श्रद्धा रखना ।

श्रावक जी के चार विश्राम-स्थान

मजदूर अपनी अन्तरंग उमंग से बोझ नही उठाता है । परन्तु ा पेट की पूर्ति के लिए उसे बोझ उठाना पड़ता है । उस मजदूर ्राम चार स्थान है—(बोझ एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर लेना रास्ते मे आये हुए चौतरे पर बोझ रखकर दो घड़ी के लिए ्र दूर करना. (3) रास्ते में धर्मशाला या अन्य मन्दिर में ्र रखकर, रात्रि विश्राम करना और (4) जहा बोझ ले जाना हां बोझ उतार कर, शान्ति का अनुभव करना ।

इसी प्रकार श्रावक जी पर गृहस्थी के भार [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] नहीं करते है । [illegible] [illegible] की [illegible] न होने के कारण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उनके चार विश्राम है ।

(1) श्रावकजी बारह व्रत ग्रहण करते हैं। और "नवकार महिम" आदि तप का नियम करते हैं। यह विश्राम स्थान (2) सुबह और शाम को दो घड़ी की सामायिक करते हैं। और दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा करते हैं-यह दूसरा विश्राम स्थान (3) अष्टमी, पक्खी के दिन प्रपंच से दूर होकर, प्रतिपूर्ण पौषध करते हैं, यह तीसरा विश्राम स्थान और 4 उपधि और अठारह पाप स्थान का त्याग करके संथारा करते हैं यह चौथा विश्राम स्थान है।

वाणी का विवेक

1. अल्प वचन श्रावक जी थोड़े और सारभूत वचन बोलते हैं।
2. कार्य वचन श्रावक जी काम होने पर बोलते हैं।
3. मीठे वचन–श्रावक जी मीठे वचन बोलते हैं।
4. निपुण वचन–श्रावक जी चतुराई से बोलते हैं।
5. अगर्व वचन श्रावक जी अहंकार से रहित बोलते हैं।
6. अतुच्छ वचन श्रावक जी मर्मभेदी वचन नहीं बोलते हैं।
7. स्यात वचन श्रावक जी सूत्र सिद्धान्त के न्याय से बोलते हैं।
8. सुमधुर वचन श्रावक जी सर्वजीव को साताकारी बोलते हैं।
9. दर्पादि वचन श्रावक जी मायाकारी वचन नहीं बोलते हैं।

सात कुव्यसन

सम्यक्त्वी आत्मा को निम्न लिखित सात कुव्यसनों का अवश्य करना चाहिये ।

मद्य-मास वेश्यागमन, परनारी रू शिकार ।
जुआ, चोरी, जो सुख चहै, सातों व्यसन निवार ।।

1. मद्य—शराब, गांजा, चरस, चण्डू आदि नशीले पदार्थों का सेवन करना ।
2. मास मास, मछली अण्डे आदि खाना ।
3. वेश्यागमन - वेश्या के घर जाना ।
4 परस्त्रीगमन—अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय अन्य स्त्री के साथ अब्रह्मचर्य का सेवन करना ।
5. शिकार—शस्त्र, गिलोल आदि से सिंह, मृग, खर-गोश चिड़िया, कबूतर आदि पशु पक्षियों को क्रीडा-कौतुक के लिये मारना ।
6 जुआ ताश-पत्ती, चौपड़, शतरंज, आदि माध्यम से पैसे लगाकर खेलना, सट्टा खेलना आदि ।
7. चोरी—सेंध आदि लगाकर, जेब आदि काटकर, रास्ते में लूटकर या और किसी उपाय से किसी के धन का हरण करना ।

मूल

जिनसे वस्तु की तथा गुण या दोष की उत्पत्ति हो,

प्राथमिक प्रश्नोत्तर

1. प्रश्न · अरिहन्त कौन है ?
उत्तर · चार घनघाती कर्मों को नष्ट करने वाले वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी।

2. प्रश्न। सिद्ध कौन है ?
उत्तर : जिनके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो चुके हो, ऐसे प्राप्त परमेश्वर।

3 प्रश्न वीतराग कौन है ?
उत्तर जिनके राग द्वेष नष्ट हो चुके।

4 प्रश्न भगवान कौन है ?
उत्तर भव भ्रमण का (जन्म-मरण) अन्त करने वाले

5. प्रश्न शूरवीर कौन है ?
उत्तर जो उत्पन्न परीषह (उपद्रव विपत्ति) को सहन करें

6 प्रश्न श्रमण कौन है ?
उत्तर . संयम और तप में श्रम करें। विषय-वासना शमन करें और समभाव युक्त रहें।

7 प्रश्न · निर्ग्रन्थ कौन है ?
उत्तर . कनक और कामिनी के त्यागी, परिग्रह के त्यागी।

8. प्रश्न भिक्षु कौन है ?
उत्तर . निर्दोष भिक्षा करने वाले।

प्रश्न : अनगार कौन है ?
उत्तर : जिन्होंने अपने घर का त्याग कर दिया हो ।

प्रश्न : यति कौन है ?
उत्तर : इन्द्रियों को वश में रखने वाले ।

प्रश्न : मुनि कौन है ?
उत्तर : अधर्म के कार्यों मे मौन रहने वाले ।

प्रश्न : पण्डित कौन है ?
उत्तर : पाप से डरने वाले ।

प्रश्न : ऋषिश्वर कौन है ?
उत्तर : समस्त जीवो के रक्षक ।

प्रश्न : योगीश्वर कौन है ?
उत्तर : जो मन, वचन, काया के योगो को वश मे रखे ।

प्रश्न : दयालु कौन है ?
उत्तर : दु.खी जीवों पर दया करे ।

प्रश्न : दानेश्वर कौन है ?
उत्तर : अभय और सुपात्र दान देने मे उदार हृदय ।

प्रश्न : ब्रह्मचारी कौन है !
उत्तर : नव वाड़ युक्त ब्रह्मचर्य पाले ।

8. प्रश्न : साधु कौन है ?
उत्तर : आत्म हित की साधना करे ।

9. प्रश्न : स्थविर कौन है ?
उ

गुरू शिष्य के प्रश्नोत्तर

शिष्य गुरुदेव से प्रश्न करता है और गुरुदेव शिष्य को उत्तर

प्रश्न : हे भगवन् ! समुद्र में तो पानी बहुत है ?
उत्तर : हे शिष्य ! इस समुद्र से भी अधिक संसार रूपी समुद्र में मोह रूपी पानी भरा है।

प्रश्न : हे भगवन् ! समुद्र में कीचड़ बहुत है ?
उत्तर : हे शिष्य ! संसार समुद्र में राग भाव रूपी कीचड़ बहुत है ?

प्रश्न : हे भगवन् ! समुद्र में तो फेन है ?
उत्तर : हे शिष्य ! संसार समुद्र में तृष्णा रूपी फेन उससे भी बड़ी है।

प्रश्न : हे भगवन् ! समुद्र में बड़े-बड़े पाताल कलश हैं ?
उत्तर : हे शिष्य ! संसार समुद्र में कषाय रूपी पाताल कलश उससे भी बड़े हैं।

प्रश्न : हे भगवन् ! समुद्र में तो वेग होता है ?
उत्तर : हे शिष्य ! संसार-समुद्र में अहंकार रूपी वेग विशाल है।

प्रश्न : हे भगवन् ! समुद्र में मच्छ-कच्छ बहुत हैं ?
उत्तर : हे शिष्य ! संसार समुद्र में भी कुटुम्ब रूपी मच्छ-कच्छ हैं।

पच्चीस बोल का थोकड़ा

बोले गति ४

नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति।

प्रश्नोत्तर

गति किसे कहते हैं ?
संसारी जीव मर कर जहां जाते हैं उसे गति कहते हैं।

नरक गति किसे कहते हैं ?
जो जीव अत्यन्त पाप कर्म करते हैं वे मर कर नरक में जाते हैं, जहा उन्हें घोर सकटों का सामना करना पड़ता है। उसे ही नरक गति कहते हैं।

: तिर्यंच गति किसे कहते हैं ?
। जो जीव झूठ बोलते हैं, छल-कपट करते, व्यापार मे धोखा देते हैं, वे मर कर प्रायः पशुयोनि में ही जाते हैं।

: मनुष्यगति किसे कहते हैं ?
.: जो जीव स्वभाव से भद्र, विनयवान् और दयालु होते हैं वे मर कर प्रायः मनुष्य होते हैं। उसे ही मनुष्य गति कहते हैं।

.: देव गति किसे कहते हैं ?
उ : जो जीव अत्यन्त शुभ कर्म करने वाले हैं, वे मर कर देवता बनते हैं। उसे ही देव गति कहते हैं।

या जीव शुभ नाम और अशुभ नाम के द्वारा अपने नाम को उत्पन्न करता है उसे नाम कर्म कहते है।

जिस कर्म से जीव अपना आयुष्य बाधता है अर्थात् नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवता की आयु जिस कर्म से उत्पन्न की जाती है उसे आयुष्य कर्म कहते हैं।

जिस कर्म से जीव ऊच-नीच जन्मो को धारण करता है उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

जिस कर्म से कार्यों मे विघ्न उपस्थित हो जाते हैं उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

रहवें बोले गुणस्थान १४

1. मिथ्यात्व गुणस्थान 2 सास्वादन गुणस्थान 3 मिश्र स्थान 4. अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान 5 देशविरति श्रावक स्थान 6 प्रमादी साधु गुणस्थान 7 अप्रमादी साधु गुणस्थान 8 नियट्टी बादर गुणस्थान 9. अनियट्टीबादर गुणस्थान 10 सूक्ष्म सपराय गुणस्थान 11 उपशान्त मोहनीय गुणस्थान 12. क्षीण मोहनीय गुणस्थान 13 सयोगी केवली गुणस्थान 14 अयोगी केवली गुणस्थान।

: जीवो की क्रमश: उन्नत अवस्थाओ को जैन शास्त्र मे क्या कहते है?

- गुणस्थान।

: गुणस्थान की परिभाषा क्या है ?

: मोह और योग (मन, वचन और काम की प्रवृत्ति) के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र

:सत्य वस्तु को असत्य और असत्य को सत्य जानना मिथ्यात्व है।

दसवें बोले छोटी नवतत्व के ११५ भेद :

नव तत्वों के नाम—1. जीव तत्व, 2 अजीव तत्व, 3. तत्व, 4 पाप तत्व 5. आस्रव तत्व, 6 संवर तत्व, 7 निर्जरा , 8. बंध तत्व, 9. मोक्ष तत्व ।

नव तत्वों के भेद—जीव के 14, अजीव के 14, पुण्य के पाप के 18, आस्रव के 20, संवर के 20, निर्जरा के 12, के 4, मोक्ष के 4 कुल मिलाकर 115 भेद हुए।

के १४ भेद

सूक्ष्म एकेन्द्रिय	के	दो	भेद—पर्याप्त	और	अपर्याप्त
बादर एकेन्द्रिय	के	"	"		"
बेइन्द्रिय	के	"	"		"
तेइन्द्रिय	के	"	"		"
चउइन्द्रिय	के	"	"		"
असन्नीपचेन्द्रिय	के	"	"		"
सन्नीपचेन्द्रिय	के	"	"		"

सूक्ष्म जीव किसे कहते हैं ?

सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जो सूक्ष्म शरीरधारी जीव हैं उनको ही सूक्ष्म जीव कहते हैं । वे जीव सारे लोक में व्याप्त हैं । उनकी आयु पूर्ण होने पर ही उनकी मृत्यु होती है । उनको कोई किसी भी शस्त्र से मार नहीं

पुद्गलास्तिकाय किसे कहते हैं ?

संसार में हम जिन अजीव पदार्थों को देखते हैं वे सब पुद्गल हैं। सड़ना-गलना, बिखरना और एकत्रित होना, ये सब क्रियाएं पुद्गलों में ही होती है। जब तक जीव के साथ इसका संबंध बना रहता है, तब तक इनके साथ सचित्त का व्यवहार किया है। जीव से सबंध छूटते ही ये अपने अपनी स्वरुप मे अचित्त रह जाते है। जैसे निर्जीव शरीर। यह द्रव्य संसारी जीवो की प्रवृत्तियों मे विशेष सहायक होता है।

प्रदेश किसे कहते हैं ?

प्रदेश वह सूक्ष्म भाग कहलाता है जिसके दूसरे भाग की कल्पना भी न की जा सके और जो स्कंध द्रव्य के साथ अवयव रूप से मिला हुआ हो।

अनेक प्रदेश मिल कर देश कहलाते है और अनेक देशों का समूह स्कंध कहलाता है। देश भी स्कंध से मिले हुए ही होते हैं, स्वतन्त्र नही रहते।

परमाणु किसे कहते हैं ?

अति सूक्ष्म भाग को, जिसका फिर हिस्सा न किया जा सके, परमाणु कहते हैं। परमाणु और प्रदेश मे यही अन्तर है कि प्रदेश देश और स्कंध से मिले हुए होते हैं जब कि परमाणु उससे पृथक होता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के प्रदेश पृथक नही हो सकते हैं। अत इन द्रव्यों मे परमाणु नही कहा गया है। रूपी अजीव द्रव्य

अदत्तादान — चोरी करना।
मैथुन — कुशील सेवन करना।
परिग्रह — धन-संग्रह की लालसा रखना।
क्रोध — रोष करना।
मान — अहंकार करना।
माया — छल-कपट करना।
लोभ — लालच, तृष्णा बढाना।
राग — स्नेह, प्रीति करना।
द्वेष — वैर।
2. कलह — क्लेश करना।
3 अभ्याख्यान — झूठा कलंक चढाना।
4 पैशुन्य — चुगली करना।
5. पर-परिवाद — दूसरों की निंदा करना।
6 रति-अरति — मनोज्ञ वस्तुओं पर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ वस्तुओं पर नाराज होना।
17. माया मृषावाद — छल-कपट के साथ झूठ बोलना।
18. मिथ्यादर्शन शल्य - कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा रखना।

आस्रव के २० भेद

1. मिथ्यात्व — असत्य विचार करे सो आस्रव।
2. अव्रत — प्रत्याख्यान नहीं करे सो आस्रव।

आत्मा पर लगे हुए कर्मों का एक-देश से ... है। उपवास करना, भूख से कम खाना। रसादिष्ट पदार्थों का त्याग करना, दूसरों की सेवा करना ज्ञान की उपासना करना आदि से कर्मों की निर्जरा होती है।

के ४ भेद

1. प्रकृति बंध 2, स्थिति बंध 3 अनुभाग बंध 4 प्रदेश बंध।

बंध तत्व किसे कहते हैं ?

आत्मा पर लगे हुए कर्मों को बंध कहते हैं। ये कर्म ज्ञानावरणीय आदि 8 प्रकार के होते हैं। इन्हीं से आत्मा संसार में भटकती रहती है।

आठ कर्मों के स्वभाव को प्रकृति बंध कहते हैं। आठ कर्मों के काल परिमाण को स्थिति बंध कहते हैं। आठ कर्मों के तीव्र आदि रस को अनुभाग बंध कहते हैं। कर्म पुद्गलों के दल का आत्मा के साथ बंध होना प्रदेश बंध कहा जाता है।

प्रकृति बंध और प्रदेश बंध का कारण योग है और स्थिति और अनुभाग बंध कषाय से होते हैं।

मोक्ष के ४ भेद

1. सम्यक् दर्शन, 2. सम्यक् ज्ञान, 3. सम्यक् चारित्र और 4. सम्यक् तप।

: सम्यग् दर्शन किसे कहते हैं ?

कीमत का रत्नजडित बहुमूल्य बैल
नन्त लोभ वृति उसको प्रेरित कर
कौड़ी का निर्माण करने के लिए
र मनुष्यों को कोई दान और सुखी

मुम्मुन सेठ धन संचियो, छप्पन कोड।
नहीं खायो नही खरचियो, मुग्रो माथा फोड़॥

दान से बढ़ कर धन की कोई श्रेष्ठ गति नहीं।

में दबाव नहीं–

'देना चाहिए' की भावना श्रेष्ठ दान की भावना है। देना
इसमे दबाव मालूम पडता है। भार अनुभव होता है। भय
प्रतीति होती है। राजनैतिक दबाव, सत्ता का आतंक, दोस्ती
आग्रह, प्रभावशाली व्यक्तित्व आदि दाता को दान देने के लिए
र करते हैं। दाता भी क्षेत्र, काल, स्थिति देख कर जैसा मुंह
है–तिलक निकाल देता है। यह मजबूरी का नाम
जाती है। सच्चा दान मुक्त मन, मुक्त हस्त और ममत्व त्याग
रम्भ होता है। यही दान सात्विक दान है।'तद्दान सात्विक
महापुरुषो ने इसी प्रकार के दान को धर्म का अंग बताया
हमारे आराध्य तीर्थंकर भी दीक्षित होने के पूर्व वर्षीदान
दान की महिमा दर्शाते हैं।

दान–

–जैनागमो में दान के मुख्य रूप से दो भेद वर्णित

कृताग सूत्र मे कहा गया है 'दाणाणं सेट्ठं अभयप्पयाणं' अभयदान श्रेष्ठ है। अपने मे भयभीत जीवो को भयमु अभयदान है। भगवान् महावीर ने फरमाया—'सब जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता,' अतः जीव दया करना धर्म है। अभयदान के द्वारा कई जीवों ने अपने भव भ्रमण का अन्त कर दिया। राजा मेघरथ ने एक छोटे से पक्षी के लिए शरीर का मास काट कर तराजू पर रख उसने जीव रक्षा के लिए शरीर व प्राणों के उत्सर्ग की बाजी लगा दी। धन्य थी जीव रक्षा की भावना। अभयदान के प्रभाव मे आगे चल कर राजा मेघरथ तीर्थंकर शातिनाथ बने।

भगवान् नेमीनाथ का जीवन प्रसग अभयदान का उदाहरण है। शहनाइया बज रही थी वाद्ययन्त्रों की सुमधुर लहरिया कानों मे अमृत घोल रही थी। शनैः शनैः वर यात्रा आगे बढ रही थी। आनन्द और उल्लास का रग था। सहसा भगवान् नेमीनाथ के कानों मे मूक पशुओं का क्रन्दन और आर्त स्वर पहुचता है। करूणा के सागर का कोमल हृदय हिल जाता है, द्रवित हो जाता है। वे सारथी से पूछते हैं। 'सुख के इच्छुक ये प्राणी बाड़ो के पिंजरों में क्यों बन्द हे ?

कस्स अट्ठा इमे पाणा एए सव्वे सुहेसिणो।
वाडेहि पजरेहि च सन्निरूद्धाय अच्छहि ॥

—थी से यह जान कर कि 'ये पशु-पक्षी आपके विवाह

भोजन सामग्री बनेंगे' । उन्होंने तत्काल सभी पशु-पक्षियों को मुक्त करा कर रथ मोड़ दिया और त्याग के मंगलमय मार्ग पर चल दिए। गर जीवों के वल्लभ बन गए।

सुपात्र दान--

सुपात्र दान का सर्वाधिक महत्त्व है। श्रावक के द्वादश व्रतों अन्तिम व्रत विधान का नाम अतिथि संविभाग व्रत है। संविभाग बिना मुक्ति नहीं। असविभागी नहु तस्स मोक्ख" (द. अ9) आगमों में सुपात्र को तीन भागों में विभक्त किया है। (1) सम्यग् दृष्टि (2) देश विरति श्रावक (3) सर्व विरति साधु।

(1) सम्यग् दृष्टि--

चतुर्थ गुणस्थान वर्ती अविरति सम्यग् दृष्टि जो वीतराग, निर्ग्रन्थ गुरु और केवली भाषित धर्म पर दृढ श्रद्धा रखता है, तु चारित्रावरणीय कर्म के उदय से व्रत ग्रहण नहीं कर सकता।

(2) देश विरति श्रावक--

द्वितीय श्रेणी में श्रावक आते हैं जो जीवादि नव तत्व, तीस क्रिया के जानकार होते हैं, जो चारित्रावरणीय कर्म के क्षयोपशम से देशतः अहिंसा, सत्य अचौर्य आदि व्रतों को ग्रहण करते उन्हें देने से भी निर्जरा होती है।

(3) निर्ग्रन्थ मुनि--

सर्वोत्तम सुपात्र निर्ग्रन्थ मुनि हैं। जिन्होंने संसार के सम्पूर्ण

ऐश्वर्य एव भोग विलास को ठुकरा कर हिंसा असत्य, चोरी
ब्रह्मचर्य आदि का सर्वथा उन्मूलन कर दिया है। श्रावक को प्रमे
भाव से चौदह प्रकार के पदार्थ सयमी मुनिराज, महासतियो
देना चाहिए –

असगा. पाण, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्ब
रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक' औषध, भेपज देते सम
चित्त-वित्त और पात्र की शुद्धता होनी चाहिए। देते समय दा
का मन शुद्ध निष्काम होना चाहिए, यह चित्त की विशुद्धता है
जो वस्तु दी जा रही है वह प्रासुक एव शुद्ध होनी चाहिए, यह वि
की विशुद्धता है। लेने वाला रत्नत्रयी का आराधक हो यह प
की विशुद्धता है। नि:स्वार्थ भाव से देने वाला, सयम निर्वाह
नि:स्वार्थ भाव से लेने वाला दोनो दुर्लभ हैं। कहा है -

'दुल्लहाओ मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा' (द अ 5)

सगम ग्वाला बडी कठिनाई से खीर प्राप्त कर सयमी
को प्रतिलाभित करने की भावना भाता है। 'यादृशी भावना य
सिद्धिर्भवति तादृशी'। सगम को मास खमण की तपस्या करने व
घोर तपस्वी का सुयोग मिलता है। उसकी प्रमोद भावना उम
है। वह बडी श्रद्धा से खीर वहराता है। उत्कृष्ट भावना से देने
कारण वह महान ऋद्धिशाली शालिभद्र बनता है। सिर्फ द्राक्षा
धोया हुआ पानी देकर शख राजा ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपा
किया और भगवान् नेमिनाथ के रूप मे अवतरित हुए। नयसा
भव में दिए गए दान के कारण भगवान् महावीर के जी
सम्यक्त्व का स्पर्श किया। यह दान ही उनके महावीर ब
मे सहायक बना। [illegible] दान के [illegible] ससार

अन्यत्र दुर्लभ है। दान जप है क्योंकि देने वाले की वि
एकाग्र हो जाती है। दान तप है क्योंकि ममत्व बुद्धि क
पड़ता है। दान धर्म का प्रशस्त मार्ग है क्योंकि
के कटक यहां नहीं होते। दान एक उत्स है
सहृदयता, सदाशयता, अनुकम्पा, करुणा, मैत्रीभाव
कई धाराएं प्रवाहित होती हैं।

"सत्कार पूर्वक दान दो, अपने हाथ
से दान दो, ठीक तरह से दोषरहित दान

रात्रि भोजन का

अहिंसा भावना का प्रतीक—

जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म
की साधना अहिंसा, कल्याण, मैत्री
पर आधारित है। अहिंसक साधक
उत्तम होता है। यद्यपि उसकी
की चरम सीमा को छूने की पावन
भावना विश्व मंगल की रहती है।
मात्र की रक्षा से उसका हृदय

मैत्री भाव जगत में मेरा
दीन दुःखी जीवों पर मेरे

(

अहिंसक करुणा का सागर, दया का आगार, सद्भावना का
वैर, सरलता का स्रोत, मैत्री का महोदधि और अनुकम्पा का
होता है। वैर उसके पास भटकता नहीं। कषाय के कांटों में
उलझता नहीं। अजात शत्रु का आदर्श अपना कर तप संयम
प्रबल साथ में लेकर वह बढ़ता है। उसका पथ प्रशस्त एवं
ल होता है। रात्रि भोजन का त्याग भी उसकी अहिंसा साधना
एक सिद्धि है।

त्विक आहार प्राप्ति में सहायक—

जैन धर्मसाधना की प्रगति के लिए खान-पान, आचार-विचार,
र-विहार विशुद्धि को बड़ा महत्व देता है। अशुद्ध आहार
रों मे विकृति लाता है। संस्कारों को क्षुद्र और संकुचित करता
स्वास्थ्य का शत्रु है। चाहे कितना ही अच्छा भोजन हो, रात्रि
ह एषणिक नहीं है। संसार में बहुत त्रस और स्थावर सूक्ष्म
ी है वे रात्रि मे दिखते नहीं है। रात्रि में अन्धकार के कारण
न के पात्रो मे जीवों के उड़ कर गिरने और चढ़ने की सम्भावना
ी है। रात्रि मे मनुष्य की आंखें निस्तेज हो जाती हैं, अतः
जीव दिखाई नहीं देते हैं और भोजन में गिर कर भोजन का
बन जाते हैं परिणाम स्वरूप मांसाहार का दोष लगता है।
मनुष्य ने मांसाहार का त्याग किया वह भी कभी-कभी इस
र रात्रि भोजन करने के कारण मांसाहार का दोषी बन जाता
भगवान ने फरमाया है :—

> सन्ति मे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा,
> जाइं राओ अपासतो कहमेसणियं चरे। द. अ. 7 गा-24

अन्यत्र दुर्लभ है। दान जप है क्योंकि देने वाले की चित्त वृत्तियां एकाग्र हो जाती हैं। दान तप है क्योंकि ममत्व बुद्धि को हटाना पड़ता है। दान धर्म का प्रशस्त मार्ग है क्योंकि मोह मत्सरता, ईर्षा के कंटक वहां नहीं होते। दान एक उत्स है जिससे सरसता, *सहृदयता, सदाशयता, अनुकम्पा, करुणा,* मैत्रीभाव की एक साथ कई धाराएं प्रवाहित होती हैं।

"सत्कार पूर्वक दान दो, अपने हाथ से दान दो, मन से दान दो, ठीक तरह से दोषरहित दान दो"

रात्रि भोजन का त्याग

अहिंसा भावना का प्रतीक—

जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म है। जैन श्रमण या श्रमणोपासक की साधना अहिंसा, कल्याण, मैत्री, सद्भावना, दया, अनुकम्पादि पर आधारित है। अहिंसक साधक का विचार विशुद्ध और आचरण उत्तम होता है। यद्यपि उसकी आत्म साधना वैयक्तिक विकास की चरम सीमा को छूने की पावन प्रक्रिया है, फिर भी उसकी भावना विश्व मंगल की रहती है। सभी जीव, भूत, सत्व एवं प्राणी मात्र की रक्षा से उसका हृदय अनुप्राणित रहता है—

मैत्री भाव जगत् में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे।

है और मूर्च्छा को भगवान् ने परिग्रह कहा है। अतः रात्रि भोजन सब दोषों का कोष है। इसका त्याग किए बिना व्रतों का पालन नहीं हो सकता।

निशीथ सूत्र के ग्यारहवें उद्देशे में बताया गया है—

'जो भिक्षु दिन में अशन पान खाद्य स्वाद्य ग्रहण करके दूसरे दिन भोगे, दूसरों को भोगावे, भोगने वाले का भला जाने।

जो साधु रात्रि में अशनादि लेकर दिन में भोगे-भोगवावे और और अन्य भोगने वाले को भला जाने तो चातुर्मासिक प्रायश्चित लगता है। रात्रि भोजन हिंसापूर्ण और पाप जनक है अतः भगवान् फरमाते हैं :—

अत्थं गयम्मि आइच्चे, पुरत्थाय अणुग्गए,
आहारमाइय सव्व मणसा वि न पत्थए। द. अ 8 गा 28

सूर्यास्त होने पर सूर्योदय तक साधक को आहारादि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए।

अन्य मतों में भी रात्रि भोजन को अधार्मिक बताया है—

त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ भगवान् ने रात्रि भोजन का निषेध किया ही है, किन्तु कुछ अल्पज्ञ धर्म प्रवर्तकों ने भी इसे पापवर्द्धक बताया है। मार्कण्डेय ऋषि ने सूर्यास्त के बाद पानी पीने को खून पीना और भोजन को मांस भक्ष्य तुल्य बताया है।

अस्त गते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते,
अन्न मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा।

महाभारत के शांति पर्व में भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त हुए हैं। रात्रि भोजन का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। स्कूली शिक्षा और व्यवसाय में व्यस्त रहने के कारण व श्रद्धा के अभाव में आज के युवक और किशोरों का सम्पर्क देव, गुरु और धर्म से होना नहीं। अतः रात्रि भोजन त्याग की बात सहज में उनकी समझ में नहीं आती है।

भगवान् ने फरमाया कि साधक को चारों प्रकार के आहार का रात में त्याग करना चाहिए और दिन में खाने के लिए भी रात्रि भोजन का संचय नहीं करना चाहिए :—

> चउव्विहे वि आहारे राइ भोयण वज्जणा,
> सन्निही संचयो चेव वज्जेयव्वो सुदुक्कर। उ.अ. 19 गा 30

भगवान् ने रात्रि भोजन का त्याग रूप छट्ठा व्रत बताया। 'अहावरे छट्ठे भंते, वए राइभोयणाओ वेरमणं सव्वं भंते, राइभोयणं पच्चक्खामि ... इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयण वेरमण छट्ठाइं अत्तहियट्ठाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।'

अर्थात् अपनी आत्मा के कल्याण के लिए साधक अहिंसा पांच महाव्रतों एवं छट्ठे रात्रि भोजन त्याग रूप व्रत के पालन की प्रतिज्ञा करता है।

रात्रि भोजन से सभी महाव्रतों में दोष लगता है—

रात्रि के समय सूर्य के प्रकाश के अभाव में सूक्ष्म शरीर वाले भांति-भांति के जन्तु इधर-उधर उड़ते हैं, नवीन उत्पन्न होते हैं।

ाचे-ऊपर जाते हैं। इसलिए हिंसा होना स्वाभाविक है। दीक्षा
ते समय प्रतिज्ञा की जाती है कि 'आज से मैं किसी प्राणी को
हिंसा नहीं पहुँचाऊंगा' जब रात्रि भोजन किया जाता है, हिंसा
होती है। प्राणातिपात के साथ प्रतिज्ञा का पालन नहीं होने से
मृषावाद का दोष लगता है। 'रात्रि भोजन न करने' रूप जिनाज्ञा
का लोप होने से, एवं रात्रि भोजन से विराधित होने वाले प्राणियों
की आज्ञा के बिना उनके प्राणों का अपहरण करने से अदत्तादान
का दोष लगता है।

> रक्तः भवन्ति तोयानि, अन्नादि पिशितं भवेत्,
> रात्रिभोजनसक्तस्य भोजनं क्रियते कथम् ?

अर्थात् रात्रि भोजन करने वाले को जल रक्त के समान और
भोजन मांस के समान लगता है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी रात्रि भोजन त्याज्य है—

सूर्य के प्रकाश में जो उष्मा रहती है वह अन्न के पाचन में
सहयोगी होती है। आयुर्वेद के अनुसार सूर्य किरण के अभाव में
हृदय एवं नाभि कमल संकुचित हो जाता है—

'हृन्नाभि पद्म सकोचश्चण्डरोचिरभावतः' 'चरकसंहिता' दिन
में भोजन करने से भोजन करने और शयन करने के समय मे काफी
अन्तर रह जाता है, फलस्वरूप अन्न का ठीक तरह से पाचन होने
का अवसर मिल जाता है। रात्रि में भोजन करने वालों की यह
आदत होती है कि खाते ही बिस्तरे पर लेट जाते हैं, इससे न अन्न
पूरा हजम होता है और न उसका रस परिणमन भी ठीक से होता

भी 'ग्रात्मा' है यह कहते हैं। सर्वज्ञ के वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकते हैं और गुरुदेव भी निःस्वार्थ भाव से कथन करते है. इसलिए उनके वचन भी मिथ्या नहीं हो सकते है। इस प्रकार आगम प्रमाण से भी 'आत्मा है' — यह सिद्ध होता है।

6 पुनर्जन्म ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं कि जिन्हे अपने पूर्वभव का स्मरण हुआ हो। उनके विषय में खोज करने पर, उनकी पूर्वभव सम्बन्धी बात सत्य सिद्ध होती हैं यदि शरीर में भिन्न आत्मा का अस्तित्व न हो तो पुनर्जन्म की घटनाएं सत्य सिद्ध नही हो सकती हैं। परन्तु वे सत्य सिद्ध होती हैं। अतः आत्मा का अस्तित्व भी सिद्ध होता है।

7. कार्य मे आत्मा का अनुमान—एक ही मा-बाप से एक साथ जन्मे हुए और एक ही वातावरण में पल कर बड़े हुए मनुष्यों की प्रकृति योग्यता और कार्यो मे भिन्नता दिखाई देती है। उसका कोई बाहरी कारण दृष्टि में नही आता है। पर उसका वास्तविक कारण जीवो के विकास की तरतमता है। अत. यह सिद्ध होता है कि आत्मा और पुनर्जन्म अवश्य होना चाहिए। कुछ जीवों में बचपन से मति श्रुतज्ञान की विशेषता देखने में आती है यह बात भी आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करती है।

8. कारण से आत्मा की सिद्धि—ऐसा देखा जाता है कि कई जीव बहुत अन्याय करते हैं। फिर भी वे दण्डित नहीं होते हैं और कई जीव बहुत ही सच्चाई से रहते हैं फिर भी पुरस्कृत नही होते है। इसलिए अन्याय में सुख और न्याय में दुःख भोगने वाला आत्मा शरीर से अवश्य ही भिन्न होनी चाहिए, जो कि परभव को गमन करती है और पूर्वभव के कर्म इस भव में और इस भव के कर्म

अगले भव मे भोगती है। यदि ऐसा न हो तो न्याय-नीति की व्यवस्था का आधार ही सर्वथा नष्ट हो जाता है।

9. अनुभूति—कई नास्तिकों को भी, यदि वे विचारशील हो तो उन्हे आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करना ही पड़ता है और आज ऐसी स्थिति हो भी रही है। उन्हें प्रत्यक्ष रूप से यह अनुभूति होती है कि जीवों में, समान जाति, समान वय, समान वातावरण आदि होते हुए भी प्रकृति आदि की भिन्नता है। इस भिन्नता का आधार स्थान और कारण भूत, जड से भिन्न (कर्म का कर्ता) आत्मा अवश्य होनी चाहिए।

इस प्रकार अनेकानेक प्रमाणों से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

स्थानकवासी जैनधर्म की विशेषताएं

जैन धर्म मे चार वर्ग हैं—1. श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, 2. श्वेताम्बर स्थानकवासी 3. श्वेताम्बर तेरापंथी 4. दिगम्बर।

काल के प्रभाव से जैन धर्म में आई हुई विकृतियों के त्याग और शुद्धि का आग्रही और आगमानुसार साधना करने की चेष्टाशील वर्ग स्थानकवासी कहलाया।

स्थानकवासी जैन धर्म की निम्नलिखित कुछ विशेषताएं हैं। जैसे—

1. आगमानुसारिता—32 आगम ही प्रमाणभूत है। निर्युक्ति,

भाष्य, चूर्णि, टीका या ग्रन्थों को आगमानुसारी और आगम से अविरोधी बातें ही मान्य हैं।

2. अहिंसा प्रधानता—धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा अहिंसा नहीं हो सकती है, आदि।

3. यत्ना प्रधानता—यत्ना ही धर्म का प्राण है। इस लिए छह काय के जीवों की अहिंसा पालने में यत्नवान् रहना चाहिए। मन्दिर आदि बनाना, धूपादि देना, चवर दुलाना, चटिये खेलना, पुष्पादि चढाना, नृत्यादि करना आदि क्रियाएं यत्ना को नष्ट करने वाली हैं। वायुकायिक जीवों की रक्षा के लिए धर्मसाधना के उपकरण के रूप में मुखवस्त्रिका अवश्य बांधना।

4. अमूर्तिपूजकता—मूर्तिपूजा धर्म का अंग नहीं है।

5. शास्त्राभ्यास—स्थानकवासी शास्त्रों के अभ्यास पर ज्यादा जोर देते हैं। श्रावकों को भी शास्त्राभ्यास करने का अधिकारी मानते हैं। आगमों के अभ्यास के लिए थोकड़ों के ज्ञान को अधिक महत्व देते हैं।

6. उपकरण विवेक—परिमित वस्त्र, पात्रादि धर्म के सहायक साधन होते हैं।

7. आडम्बर उपेक्षा—धर्म के हेतु बाजे-बाजे करना, ध्वजा-पताका लगाना, आदि उचित नहीं है। स्नान, स्थावर तीर्थ यात्रा आदि धर्म के अंग नहीं हैं।

8. दया दानादि विवेक—जीवों पर दया करना और

अनुकम्पा से प्रेरित होकर दान देना अशुभ भाव नहीं है। इससे पुण्य बन्ध भी होता है और वे धर्म की प्राप्ति में भी कारण बन सकते हैं। सुपात्रदान निर्जरा का हेतु है। आदि।

ज्ञान खण्ड

जीव को दस बोल मिलना दुर्लभ

1. जीव को मनुष्य भव मिलना दुर्लभ है।
2. जीव को आर्य क्षेत्र मिलना दुर्लभ है।
3. जीव को उत्तम कुल मिलना दुर्लभ है।
4. जीव को लम्बा आयुष्य मिलना दुर्लभ है।
5. जीव को पाचों इन्द्रिया परिपूर्ण मिलना दुर्लभ है।
6. जीव को नीरोग शरीर मिलना दुर्लभ है।
7. जीव को साधु-साध्वियों का योग मिलना दुर्लभ है।
8. जीव को जिनवाणी का श्रवण होना दुर्लभ है।
9. जीव को जिनवाणी पर श्रद्धा होना दुर्लभ है।
10. जीव को दीक्षा लेना दुर्लभ है।

हमारे आराध्य देव

जैन धर्म में देव पद सबसे विशिष्ट पद है। इस पद की महिमा अनिवर्चनीय है। यह पद स्वय पूर्ण, पवित्र एवं निष्कलक है।

पच परमेष्ठि पदो में अरिहन्त और सिद्ध देव पद में प्रतिष्ठित हैं। दोनो ही हमारे आराध्य हैं। अरिहत और सिद्ध में अन्तर यह है कि सिद्ध ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय, इन अष्ट कर्मों को सर्वथा क्षय कर दिया है। वे निष्कर्म अशरीरी, अयोगी बन कर अजर अमर पद प्राप्त कर चुके हैं। वे निष्काय, निरजन, निराकार, निर्विकल्प, निर्लेप, निरामय प्रभु हैं। कवि यह भगवान् की स्तुति करते हुए कहता है :—

> अविनाशी अविकार परम रस धाम है।
> समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम है॥
> शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध अनादि अनन्त है।
> जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवत है॥

अरिहंत भगवान् भी जब आयु पूर्ण कर लेते हैं तो सिद्ध बन जाते हैं। फिर वे भी सादि अनन्त कालतक उसी अवस्था में रहते हैं।

अरिहत ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, इन चार घाती कर्मों को क्षय किया है। अरिहंत तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, लोक-अलोक, जीव-अजीव का स्वरूप कथन करते हैं।

धर्म का मार्ग बताते हैं, भवसागर से तिरने का उपाय बताते हैं। उनके मुखारविन्द से परम पावनी द्वादशांगी वाणी का श्रवण कर अनन्त भव्य प्राणी मुक्ति मार्ग के पथिक बनते हैं। इस वाणी के समान परम हितकारी आत्मोन्नति का मर्म बताने वाली कोई अन्य वाणी संसार में नहीं है, यह सर्वोत्तम, अनुत्तर और अद्वितीय है।

अरिहंत देव की महिमा का बखान करना कठिन है। वे हमारे महान् सन्मार्ग दर्शक है। ये हमें देव, गुरु, धर्म का सच्चा स्वरूप बताने वाले व समझाने वाले हैं। अरिहंत भगवान् की वाणी को ही गणधर सुन कर सूत्र रूप से निबद्ध करते हैं। इस समय क्षेत्र की अपेक्षा से अरिहंत देव भरत क्षेत्र में नहीं है लेकिन उनके वचनामृत रूप आगम वाणी उनके समान ही संसार समुद्र से तिराने वाली है। जिनवाणी की महत्ता का गान करते हुए कवि कहता है :—

ए भव्य जनों तीर्थंकरनी वाणी नु रस पीजिए।

अरिहंत के लिए जिन, वीतराग, तीर्थंकर, परमात्मा आदि पर्यायवाची शब्द प्रचलित हैं। 'अरि' कर्मरूपी शत्रु का 'हन्त' हनन करने के कारण इन्हें अरिहंत कहा जाता है। राग द्वेष को जीतने के कारण इन्हें 'जिन' कहते हैं। साधु साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप तीर्थ की रचना करने के कारण तीर्थंकर कहलाते है। राग द्वेष आदि कषायों का निरोध करने के कारण इन्हें 'वीतराग' संज्ञा से सम्बोधित करते है।

हमारा देव तत्व अद्वितीय, सर्वश्रेष्ठ परमोत्तम परम विशुद्ध गुण सम्पन्न है। यह मोह माया अज्ञान, विषय वासना आदि दुर्गुणों

से मुक्त है। यहा हम अरिहन्त देव के परम आराध्य देव होने के सम्बन्ध मे विचार करेंगे।—

अरिहन्त भगवान् सर्वज्ञ हैं। संसार की कोई वस्तु पदार्थ भाव लोक अलोक का स्वरूप उनसे छिपा हुआ नही। उनका ज्ञान सर्वांश सम्पूर्ण और परम विशुद्ध है। वे त्रिकाल दर्शक हैं। हथेली पर रखे हुए आंवले की तरह समस्त लोक का स्वरूप उनके सामने स्पष्ट है। अरिहन्त देव की इसी सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता का यह प्रमाण है कि उनके वचनो मे कही विभेद-विकल्प नही मिलता। जैनेतर देवों मे इस गुण के अभाव के कारण विरोध दिखाई देता है। वे एक जगह कुछ कहते हैं तो अन्यत्र कुछ कहते हैं। वे एक जगह ब्रह्मचर्य की महिमा का गुणगान करते हैं तो कही अन्यत्र 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' की बात कहते हैं। एक जगह अहिंसा को श्रेष्ठ कहते हैं तो अन्यत्र स्वय ही मास भक्षण करते हैं। सामान्य योद्धाओं की तरह शस्त्र लेकर सहार करते हैं।

हमारे आराध्य देव की परम वीतरागता सदा प्रशसनीय [illegible] द्वेष के वे शिकार नही हैं। अन्य देव [illegible] ताए उनके शत्रुओं का सहार करते हैं। [illegible]। उनका कष्ट दूर करने के लिए [illegible] करते हैं। भक्त पर प्रसन्न होकर उसे सासारिक विपुल धन वैभव प्रदान करते हैं। उनका कभी तारक और कभी मारक का स्वाग प्रगट होता रहता है। पक्षपात, अनुराग विद्वेष से प्रेरित होकर एक सामान्य सासारिक पुरुष की तरह वे भी नाना कृत्य करते रहते हैं। 'क्षणे रुष्टा, क्षणे तुष्टा' के दोष से वे बचते नही हैं। रुष्ट होकर शाप देना, तुष्ट होकर वरदान देना उनकी विशेषता है। हमारे आराध्य का ऐसा स्वरूप नहीं है।

देखने को नही मिलेगा। उनका किसी के प्रति कोई राग द्वेष नहीं। वे प्राणी मात्र का कल्याण चाहते हैं। गोशाला ने भगवान् के दो शिष्यों का घात कर दिया था, और भगवान् पर भी तेजो लेश्या का प्रहार किया था, लेकिन भगवान् ने उसको एक भी शब्द नहीं कहा और न कोई विद्वेष की रेखा ही उनके मस्तक और मन मे उभरी। ऐसी वीतरागता का उदाहरण अन्यत्र मिलना असम्भव है।

हमारे आराध्य देव निष्कलंक है। उनके जीवन पटल पर कहीं कोई दूषण का हलका सा चिह्न भी नही दिखाई देगा। उनका चारित्र अति निर्मल और अनुकरणीय होता है मोह, माया से उनका नाता नहीं। कषाय की कारा को उन्होंने काट दिया। द्रव्य, दारा को ममता उन्हें छूती नही। अन्य देव पार्श्व मे अर्द्धांगना को सुशोभित किए हुए हैं। उन्हें साथ में लेकर वे भी सांसारिक भोगोपभोग मे रचे पचे रहते दिखाई देते हैं। भला जो स्वय काम क्रोध मे लिप्त हैं वह दूसरों को उनसे कैसे मुक्त कर सकते हैं। जिनेश्वर देव के उपासक निर्ग्रंथ मुनिराजों का चारित्र भी इतना निर्मल है कि देव दानव, गन्धर्व भी उनको वदन नमन करते हैं, फिर देवाधिदेव को चारीत्रिक श्रेष्ठता का तो कहना ही क्या? वे कामादि विषय विकार से सर्वथा रहित होते हैं और दूसरों को भी उनसे विरत होने का उपदेश फरमाते हैं। वे आध्यात्मिक शुद्धि के पूर्ण विकासमान पद पर पहुंचे हुए महा महिमावन्त देव हैं।

भक्त भगवान् से निवेदन करता है कि कुदेवों को भजते भजते कितना काल बीत गया? पर जो स्वय भूखा है और दरिद्र

वह दूसरों को क्या देगा ? जो लाखों को मार डाले वह क्या पुजारी ? जो भंग पीता है वह कैसा देव ? कवि कहता है—

जगी भगी विषय में रमी, निशिदिन जिनकी आत्मा।
भला बताओ हो सकते हैं वे कैसे परमात्मा ?
ऐसे कामी देव को ना शीश झुकाऊं मैं।
चांदी सोना कांसी पीतल लेकर देव बनावे है
पाषाण कृति सम्मुख रख कर पुष्प फल चढ़ावे है
ऐसे कल्पित देव को न देव मनाऊं मैं।
तेरे दर को छोड़ के किस दर जाऊं मैं।

हमारे देव ईश्वरीय अवतार नहीं है। जैन धर्म ईश्वरवादी [illegible]ी है। वह किसी एक ईश्वर को संसार का कर्ता धर्ता और संहर्ता [illegible]ी मानता। वह नहीं मानता है कि ईश्वर के हजार भुजाएं हैं [illegible]र वह दुष्टों का नाश करने वाला और भक्तों का रखवाला है। [illegible] वैकुण्ठ धाम से दौड़ कर संसार में नहीं आता और न अनेक [illegible]कार की लीलाएं दिखा कर लौट जाता है।

जैन धर्म की मान्यता है कि मनुष्य से बढ़ कर दूसरा कोई [illegible]हान् प्राणी नहीं है। उसमें अनन्त आत्म शक्ति है। वह नर [illegible] नारायण, आत्मा से परमात्मा, भक्त से भगवान् बनने की योग्यता [illegible]खता है। जिस प्रकार बादलों से आवृत सूर्य अपना सम्यक् रूप [illegible]ही दिखा सकता, उसी प्रकार जब तक मनुष्य कर्म मल से लिप्त [illegible], वह अपने सच्चे स्वरूप को प्रगट नहीं कर सकता। परन्तु जब [illegible]ह अपने स्वरूप को समझ कर, दुर्गुणों को त्याग कर शुद्ध, निर्मल, [illegible]वच्छ होता जाता है तो वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी, ईश्वर परमात्मा

शुद्ध बुद्ध बन जाता है। तदनन्तर संसार को उपदेशामृत का पान कराता हुआ निर्वाण प्राप्त कर अजर अमर अविनाशी सिद्ध पद प्राप्त कर लेता है।

वास्तव में यह कर्म मुक्त दशा ही ईश्वरत्व है। जैन धर्म की यह विचार धारा है कि प्रत्येक प्राणी अपने पुरुषार्थ और पराक्रम द्वारा साधना के सर्वोत्तम शिखर पर पहुँच सकता है। बड़ी प्रेरणा-दायक और उत्साह वर्द्धन करने वाली है। कर्म मैल का निवारण करने वाली आत्मा परमात्मा बन सकती है। कवि कहता है—

> आत्मा परमात्मा में कर्म का ही भेद है।
> अगर काटदे तू कर्म को तो फिर भेद है, न खेद है।

अरिहंत देव भी मनुष्य ही होते हैं। वे कोई विशिष्ट चमत्कारिक ईश्वर या अवतार रूप नहीं है। वे भी एक दिन नारकी के नेरिये और निगोद के सूक्ष्म जीव थे। वे भी हमारी तरह मैं पाप पंक से लिप्त संसार के दु:ख मूल आधि व्याधि से संत्रस्त थे। उन्होंने भी अनादि काल तक इस संसार में भ्रमण किया। परन्तु अपूर्व असीम पुण्योदय से उन्हें महापुरुषों का संयोग मिला, साधना के प्रशस्त पथ पर वे निरन्तर गतिशील रहे, आखिर एक दिन उनमें अनन्त ज्ञान ज्योति जगमगा उठी और वे विश्ववन्धु देवाधिदेव अरिहंत बन गए।

जैनेतर दर्शन ईश्वर का पुनरागमन मानते है। उनकी मान्यता है कि जब संसार में पाप बढ़ जाता है, धर्म का ह्रास होता है, हिंसा, अन्याय, दुराचार का जोर बढ जाता है तब ईश्वर स्वयं पृथ्वी पर अवतरित होता है। जैन सिद्धांत इस कथन को

सत्यता को स्वीकार नही करता। जो लोग यह समझते हैं कि चौबीस तीर्थंकर अवतार रूप हैं वे जैन सिद्धातो से अनभिज्ञ हैं। जैन धर्मानुसार ऐसे चौबीस तीर्थंकर रूप अनन्त चौबीसिया हो गई हैं, लेकिन जो चौबीसी हो गई है वह पुन ससार मे प्रगट नही होती। हर चौबीसी से सम्बन्धित महापुरुष वे ही नही होकर भिन्न-भिन्न थे। पृथक आत्मा थे। जैन धर्म मोक्ष प्राप्त करने के बाद ससार मे पुनरागमन नही मानता। आवागमन का जन्म-मरण का कारण कर्म है, और वह मोक्ष अवस्था मे रहता नही है। बुद्धिमान् पुरुष सोच सकते है कि जिसने जन्म-मरण के बीजांकुर को ही समाप्त कर दिया है वह ससार मे पुनरागमन कैसे कर सकता है?

यहा एक बात और स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि चौबीस तीर्थंकरो की और अन्य मुक्त होने वाली आत्माओ मे अन्तर नही होता। केवल ज्ञान, केवल दर्शन आदि आत्म-शक्तिया सभी मुक्तात्माओं मे समान होती है। सामान्य केवली और तीर्थंकर मे भेद यह होता है कि तीर्थंकर तीर्थ की रचना करते हैं। वे धर्म का प्रचार करते हैं। उनके अतिशय एव उनकी वाणी का प्रभाव अद्वितीय होता है। उनकी उपस्थिति मैं दुर्भिक्ष, अति वृष्टि, अनावृष्टि महामारी आदि उपद्रव नहीं होते। उनकी दिव्य वाणी का भावार्थ सभी आर्य अनार्य पशु पक्षी समझ लेते है। साधारण मुक्तात्मा अपना चरम लक्ष तो अवश्य प्राप्त करती हैं लेकिन जनता पर उनका चिर स्थायी आध्यात्मिक प्रभुत्व नही जम पाता। इस विषय के सन्दर्भ में यह भी समझ लेना आवश्यक है कि यह भेद जीवनमुक्त देहधारी अवस्था में ही रहता है। मोक्ष प्राप्ति के बाद कोई भेद नही रहता। वहां तीर्थंकर और अन्य मुक्तात्मा सभी एक

के सागर, मुनि मनों के राजा, सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण चरित
दिनन देव हैं।

⁙

हमारे गुरु

गुरुपद की महिमा का वर्णन शास्त्रों में अनेक प्रकार से किया गया है। जैन साधु का आचार-विचार इतना विशुद्ध व निरतिचार निर्धारित किया है कि तदनुसार आराधना करने वाली आत्मा संसार के लिए आदर्श व अनुकरणीय बन सकती है। शरद्-ऋतु के स्वच्छ निर्मल घटा के समान उनका जीवन निष्कलंक बन जाता है। वे स्वहित साधना में अपनी आत्मा का उत्थान करते हुए सरल हृदयी सद्गृहस्थों को धर्माराधना के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर, पर हित साधना का प्रयास भी करते हैं। इस स्वहित परहित साधना के रूप को ध्यान में रख कर कवि कहता है :—

विषयों की आशा नहीं जिनके साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निशिदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं।

हमारे गुरु भगवन्त आरम्भ परिग्रह से रहित, इन्द्रियों का दमन करने वाले, तथा कषायों को विरल करने वाले परम पूज्य रूप होते हैं। शास्त्रों में उनके निर्मल जीवन व गुण निष्पन्न स्वरूप

धर्म में मौज शौक, भोग विलास की छूट दी गई हो, इन्द्रिय दमन पर बल नहीं दिया गया हो 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' की बात कही गई हो वह धर्म श्रेयस्कर नहीं हो सकता।

धर्म में संयम व त्याग पर जोर देना चाहिये। तप से कर्म का नाश होता है। कुछ धर्म कायिक तप को निरर्थक मानते हैं, उनकी जीवन चर्या इस प्रकार से दिखाई गई है —

> शय्या: प्रातरुत्थाय पेया, मध्ये भक्तं पानकं चापराह्ने।
> द्राक्षा खण्ड शर्करा चार्धरात्रे, मुक्तिश्चान्ते शाक्य पुत्रेण दृष्टा॥

कोमल शय्या पर सोना, सुबह उठकर दूध या रबड़ी पीना, दोपहर को पूरा भोजन करना पिछले पहर मदिरा पान करना और आधी रात को द्राक्षा और शक्कर का उपयोग करना, ऐसे धर्म से मुक्ति मिलती है, यह शाक्य पुत्र ने देखा।

धर्म के नाम पर रस लोलुपता, इन्द्रिय पोषण आदि को बढ़ावा देना धर्म कैसे हो सकता है ? जिससे व्यसन बढ़ते हों, आत्मा विकार ग्रस्त बनती हो वह धर्म कदापि नहीं माना जा सकता।

कुछ लोग कहते हैं कि विभिन्न धर्मों की बात सुन कर और उनके विभिन्न विधि विधान देख कर हमारी बुद्धि भ्रम में पड़ जाती है अत. एक ही धर्म हो तो ठीक रहे यह कथन भी संसार की वास्तविक समस्या समझे बिना कहा गया है। संसार में लोग विविध प्रकार के भोजन करते है, विविध प्रकार के वस्त्र पहनते हैं, अनेक प्रकार के रीति रिवाज पालते हैं, ऐसा क्यो ? क्योकि सदा से रुचियों में विभिन्नता रही है और रहेगी। दूसरी बात यह है कि हर व्यक्ति में सभी वस्तुओं के पहचान की क्षमता एक जैसी नही होती। वह

अपनी रुचि, योग्यता और मगति के अनुसार विभिन्न मान्यताओं में फंस जाता है, उलझ जाता है। फिर वह गधे की पूछ पकड़ कर लात खाने वाले की तरह उससे चिपका ही रहता है।

कुछ लोग कहते हैं कि हमें सभी धर्मो का सम्मान करना चाहिये। सभी धर्म समान हैं। सभी रास्ते एक हैं और वे सब मोक्ष मार्ग की ओर ले जाते हैं। यह सोचना भी ठीक मालूम नहीं होता। यह ठीक है कि हम किसी धर्म का अपमान नहीं करे, पर मान तो गुण दोष की परीक्षा में श्रेष्ठ निकलने वाले को ही दिया जा सकता है। परीक्षा के बिना सबको अच्छा मान लेना हीरे को काच के समान और गुड़ को गोबर के समान मानने के सदृश होगा। जो धर्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवों के प्रति करूणा भावना की बात करता है वह भी अच्छा और जो पशु वध की आज्ञा दे, वह भी अच्छा। जो मांस मदिरा आदि सप्त व्यसन के त्याग की बात कहता वह भी अच्छा और जो इनके सेवन की छूट देता वह भी अच्छा। यह न्यायोचित कैसे हो सकता है?

कुछ लोग कहते हैं अच्छी वस्तु हर जगह से ग्रहण करनी चाहिये। प्रश्न यह उठता है कि अच्छी वस्तु की पहचान क्या? शास्त्रकारों ने कह दिया कि वस्तु वही ठीक है, जिसमें अहिंसा, संयम व तप हो। जिसमें इनका अभाव है वह *त्याज्य* है। जैन धर्म ही ऐसा धर्म है जिसमें सर्वांग रूप से ये बातें पाई जाती हैं अतः इसका आराधन ही श्रेयस्कर है।

जैनागमों में धर्म का स्वरूप विस्तार पूर्वक समझाया गया है। आत्म शुद्धि के बिना जीवन का विकास नहीं हो सकता, अतः आत्म शुद्धि को भी धर्म कहा गया है आत्म शुद्धि से तात्पर्य विभाव

महावीर सन्देश

यही है महावीर सन्देश ।
मनुज मात्र को सुख पहुंचाना हर सब के दुःख क्लेश ।
असद्भाव रक्खो न किसी से, हो अरि क्यों न विशेष ।
यही है महावीर सन्देश ॥ 1 ॥

वैरी का उद्धार श्रेष्ठ है, कीजे सविधि विशेष ।
वैर छूटे उपजे मति जिससे, वही सरल सन्देश ॥ 2 ॥

घृणा पाप से, हो पापी से, नहीं कभी लवलेश ।
भूल सुझा कर प्रेम मार्ग से, करो उसे पुण्येश ॥ 3 ॥

तज एकान्त कदाग्रह, दुर्गुण, बनो उदार विशेष ।
रह प्रसन्नचित्त सदा करो तुम, मनन तत्त्व उपदेश ॥ 4 ॥

जीतो राग-द्वेष, भय-इन्द्रिय, मोह-कषाय अशेष ।
धरो धैर्य समचित रहो, अरु सुख दुख में अविशेष ॥ 5 ॥

वीर उपासक बनो सत्य के, तज मिथ्याभिनिवेश ।
विपदाओं से मत घबराओ, धरो न कोपावेश ॥ 6 ॥

सत्‌शाली-समदृष्टि बनो, अरु तजो भाव सक्लेश ।
सदाचार पालो दृढ होकर, रहे प्रमाद न लेश ॥ 7 ॥

सादा रहन-सहन भोजन हो, सादा भूषा-वेश ।
विश्व प्रेम जागृत कर उर में, करो कर्म निःशेष ॥ 8 ॥

हो सबका कल्याण,' भावना ऐसी रहे हमेश।
सदा लोक-सेवा दत्तचित्त हो, और न कुछ सन्देश।
यही है महावीर सन्देश। धन्य है महावीर सन्देश ॥ 9 ॥

आत्म जागरण

उठ भोर भई टुक जाग सही,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु।
अब नींद अविद्या त्याग सही,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ॥ 1 ॥

जग जाग उठा, तू सोता है,
अनमोल समय यह खोता है।
तू काहे प्रमादी होता है,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ॥ 2 ॥

यह समय नहीं है सोने का,
है वक्त पाप मल धोने का।
अब सावधान चित्त होने का,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ॥ 3 ॥

तू कौन, कहां से आया है,
अब गमन कहां मन भाया है?
टुक सोच यह अवसर पाया है,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ॥ 4 ॥

कंचन कांच गहे सम जगत के, समताभाव मन लाय।
आशीर्वाद शाप नहीं देवे, नशा पता नहीं चाय ॥3॥

मुंह पर सदा मुंहपत्ति राखे, भवना ज्ञान सुनाय।
त्यागी वैरागी मुनिराजों के, चरणों शीश नमाय ॥4॥

॥ सेवो सिद्ध सदा जयकार ॥

सेवो सिद्ध सदा जयकार, जासे होवे मंगलाचार ॥टेर॥

अज अविनाशी, अगम, अगोचर, अमल अचल अविकार।
अन्तर्यामी, त्रिभुवन स्वामी, अमित शक्ति भण्डार ॥1॥

कर चकचूर कम्मट्ठ अट्ठ, गुणयुक्त मुक्त संसार।
पायो पद परमेष्ठी तास पदा, वन्दो बारम्बार ॥2॥

सिद्ध प्रभु को सुमिरण जग में, सकल सिद्धि दातार।
मन वांछित पूरण सुर तरु सम, चिन्ता चूरणहार ॥3॥

जपे जाप योगीश रात दिन, ध्यावे हृदय मझार।
तीर्थंकर है प्रण में उनको, जब होवे अणगार ॥4॥

सूर्योदय के समय भक्तियुत, स्थिर चित्त दृढता धार।
जपे सिद्ध यह जाप तास घर, होवें ऋद्धि अपार ॥5॥

सिद्ध स्तुति यह पढ़े भाव से प्रति, दिन जो नरनार।
सो दिव शिव सुख पावें निश्चय, बना रहे सरदार ॥6॥

सुधर्म प्रचार मंडल साहित्य पुष्प माला पाँचवां पुष्प

'णाणस्स सव्वस्स पगासणाए'

सुधर्म जैन पाठमाला

भाग द्वितीय

प्रकाशक :

श्री सुधर्म प्रचार मंडल, सिटी पुलिस, जो